मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 130 • वर्ष 14, अंक 6 • अगस्त 2024 • दस रुपये • 20 पृष्ठ (विशेष अंक)

मज़दूर बिगुल

मोदी-शाह सरकार की नयी अपराध संहिताओं का फ़ासीवादी जनविरोधी चरित्र 14

बढ़ते स्त्री-विरोधी अपराधों के पैदा होने की ज़मीन की शिनाख़्त करनी होगी! 11

बंगलादेश का जनउभार और मेहनतकशों की एक क्रान्तिकारी पार्टी की ज़रूरत 19

मोदी-शाह की राजग गठबन्धन सरकार का पहला बजट

मेहनतकश-मज़दूरों के हितों पर हमले और पूँजीपतियों के हितों की हिमायत का दस्तावेज़

वित्तमन्त्री निर्मला सीतारमण ने 23 जुलाई 2024 को मोदी-शाह नीत राजग सरकार का पहला बजट पेश किया। बीते लोकसभा चुनावों में राज्यसत्ता के भीतर घुसपैठ के ज़रिये ईवीएम घपला करने, नौकरशाही व समस्त संस्थाओं का इस्तेमाल करने, बसपा जैसी दल्ली पार्टियों को अपने प्रॉक्सी उम्मीदवार के रूप में खड़ा करने के बावजूद, भाजपा अपने बूते पर बहुमत तक नहीं पहुँच पायी। इसका प्रमुख कारण था देश में बेरोज़गारी और महँगाई को लेकर मौजूद गहरा असन्तोष। अब जबकि महाराष्ट्र, हरियाणा व झारखण्ड जैसे राज्यों में विधानसभा चुनाव आ रहे हैं, तो भाजपा-नीत राजग सरकार के सामने यह चुनौती थी कि आर्थिक असन्तोष को लेकर कुछ किया जाय। लेकिन साथ ही चुनावों से पहले इलेक्टोरल बॉण्ड के ज़रिये जो लाखों करोड़ का चन्दा देश के पूँजीपति वर्ग ने भाजपा को दिया है, उसके बदले पूँजी के हितों की भी सेवा करनी थी। नतीजतन, मोदी सरकार के नये बजट में वही हुआ जो हो सकता था और जिसकी आशंका थी। यानी, देश के मज़दूरों, मेहनतकश ग़रीब व मँझोले किसानों और आम घरों से आने वाले छात्रों, युवाओं व स्त्रियों को केवल झुनझुना थमाया गया जबकि पूँजीपतियों की सेवा के लिए सारे असली कदम उठाये गये। पूँजीवादी बजट का विश्लेषण करना और उसके वर्गीय चरित्र को समझना

सम्पादकीय अग्रलेख

सर्वहारा वर्ग का एक कार्यभार हो सकता है। केवल तभी वह व्यापक जनता के समक्ष इसके चरित्र को साफ़ कर सकता है।

बजट भाषण में वित्तमन्त्री ने बेरोज़गारी के मसले पर काफ़ी-कुछ कहा। उन्हें पता था कि बीते लोकसभा चुनावों में तमाम हेराफेरी के बावजूद भाजपा की जो गत बनी उसके पीछे बेरोज़गारी और उसके कारण व्यापक मेहतनकश आबादी और युवाओं में मौजूद ग़ुस्सा एक प्रमुख कारण था। इसलिए सबसे पहले यह देख लेते हैं कि रोज़गार के मोर्चे पर मोदी सरकार ने क्या किया है।

बेरोज़गारी के मुद्दे पर बजट 2024-25 : मज़दूरों और नौजवानों को मूर्ख बनाने की चालाक कोशिश

बजट से पहले आये आर्थिक सर्वेक्षण में सरकार ने कुबूल किया था कि देश की "कारपोरेट पूँजी मुनाफ़े के समन्दर में तैर रही है"। ग़ौरतलब है, 2020 से 2023 के बीच भारत 33,000 शीर्ष कम्पनियों का कर-पूर्व मुनाफ़ा चौगुना हो गया। लेकिन निजी क्षेत्र के पूँजीपतियों के लाभ में हुई भारी बढ़ोत्तरी की तुलना में निजी क्षेत्र में नौकरियों में बढ़ोत्तरी नहीं के बराबर हुई है। इसलिए सरकार भी निजी क्षेत्र को तमाम नयी सहूलियतें देते हुए उससे आग्रह करती नज़र आ रही है कि "हे प्रभु, नया निवेश करें, नयी नौकरियाँ पैदा करें, अन्यथा आपके सेवक ख़तरे में पड़ सकते हैं।" ये नयी सहूलियतें क्या हैं? बजट में मोदी सरकार ने रोज़गार पैदा करने की क्या नीतियाँ पेश की हैं?

सबसे पहली नीति को नाम दिया गया है **रोज़गार-सम्बन्धित प्रोत्साहन (एम्प्लॉयमेण्ट लिंक्ड इन्सेण्टिव)**। ये क्या वस्तु है? यह एक दिलचस्प वस्तु है! इसके तहत, मोदी सरकार उन पूँजीपतियों को विशेष राहत देगी जो नये मज़दूरों को काम पर रखेगी। कैसे? मोदी सरकार उन्हें मज़दूरी का एक हिस्सा देगी, जिससे कि मज़दूरी-

(पेज 9 पर जारी)

हिण्डेनबर्ग की दूसरी रिपोर्ट में सट्टा बाज़ार विनियामक सेबी कटघरे में

वित्तीय पूँजी की परजीवी दुनिया की ग़लाज़त की एक और सच्चाई उजागर

● आनन्द

निवेश शोध और शॉर्ट सेलर संस्था हिण्डेनबर्ग रिसर्च ने अडानी घोटाले से सम्बन्धित अपनी दूसरी रिपोर्ट सार्वजनिक की है जिसमें सट्टा बाज़ार की विनियामक संस्था सेबी (प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड ऑफ़ इण्डिया) और उसकी चेयरपर्सन माधबी पुरी बुच और उनके पति धवल बुच की अडानी ग्रुप के घोटाले में संलिप्तता के प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। याद रहे कि पिछले साल जनवरी में हिण्डेनबर्ग रिसर्च ने अडानी घोटाले की सनसनीखेज सच्चाई उजागर की थी जिसके बाद सट्टा बाज़ार में भूचाल आ गया था। इस रिपोर्ट में दिखाया गया था कि अडानी समूह ने इतने कम समय में जो पूँजी का साम्राज्य खड़ा किया है उसके पीछे दशकों से स्टॉक क़ीमतों और बही-खातों की हेराफ़ेरी, विदेशी 'टैक्स हैवेन' में मौजूद अपने परिजनों द्वारा संचालित फ़र्ज़ी शेल कम्पनियों के ज़रिये अपने पैसे को अपनी ही कम्पनी में फिर से निवेश करके उसके शेयर की क़ीमतों को कृत्रिम रूप से बढ़ाने और इन ऊँची शेयर क़ीमतों को दिखाकर देश और दुनिया की तमाम वित्तीय संस्थाओं से भारी-भरकम क़र्ज़ लेने की तिकड़म काम कर रही है। इसे कॉरपोरेट जगत के सबसे बड़े घोटाले की संज्ञा दी गयी थी। वित्तीय पूँजी की परजीवी दुनिया की सड़ाँध उजागर होने के बावजूद अडानी समूह के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं हुई। प्रधानमन्त्री के जिगरी यार अदानी के ऊपर भला काई कार्रवाई हो भी कैसे सकती थी! मामला उच्चतम न्यायालय तक भी गया, लेकिन वहाँ भी इस लुटेरे पूँजीपति का बाल भी बाँका नहीं हुआ। बस सेबी के नेतृत्व में एक कमेटी बनाकर मामले को ठण्डे बस्ते में डाल दिया। सेबी ने आजतक इस महाघोटाले पर अडानी के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की है। हिण्डेनबर्ग की दूसरी रिपोर्ट आने के बाद यह साफ़ हो गया है कि सेबी की इस उदासीनता की वजह क्या थी।

अपनी दूसरी रिपोर्ट में हिण्डेनबर्ग ने दिखाया है कि सेबी की चेयरपर्सन माधबी पुरी बुच ने सेबी में ज्वाइन करने से पहले और उसके बाद भी अपने पति धवल बुच के साथ मिलकर विदेशों में ऐसे ऑफ़शोर फ़ण्ड में निवेश किया जिन्हें गौतम अडानी का भाई विनोद अडानी संचालित करता था। ग़ौरतलब है कि विनोद अडानी ही वह शख़्स है जो अडानी समूह के गोरखधन्धों को विदेशी टैक्स हैवेन में दर्जनों फ़र्ज़ी शेल कम्पनियों के ज़रिये संचालित करता है और काले धन को सफ़ेद धन में बदलता है। माधबी बुच 2017 में

(पेज 13 पर जारी)

अडानी जी का मोदी जी से भ्रष्टाचार-विहीन प्रेम!

(पेज 20 से आगे)

वाले लोगों से बनता है! सही बात है! लेकिन किन लोगों से? क्या हर सड़क पर बेकार घूमते मज़दूर, नौजवान, औरतों से? ऐसा थोड़े होता है!

वैसे भी हमारे देश में भ्रष्टाचार-व्रष्टाचार की संस्कृति नहीं है। कभी आपने सुना है रामराज्य में भ्रष्टाचार हुआ हो? क्या आपने सुना है कि सतयुग में भ्रष्टाचार हुआ हो? ये तो बीच में 60 साल कलयुग के आ गये, वर्ना हमारा देश भ्रष्टाचारविहीन देश है। यह एक धार्मिक और आध्यात्मिक देश है। यहाँ टॉर्च लेकर भी ढूँढेंगे, तब भी भ्रष्टाचार का नामोनिशान नहीं दिखायी देगा। हमारे देश में आकर तो भ्रष्टाचारी अंग्रेज़ भी सदाचारी बन गये थे। इसीलिए उनकी हमारे देश के सदाचारी सावरकर, हेडगेवार, गोलवलकर, श्यामाप्रसाद मुखर्जी, हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से खूब बनती थी, जिन्होंने अंग्रेज़ों को सदाचार का तावीज़ दिया था। भ्रष्टाचार विदेशी संस्कृति है, हमारे देश के लोगो के ख़ून में भ्रष्टाचार नहीं है। यही कारण है कि हमारे देश के सबसे धनी लोग भ्रष्टाचार करें, ये हो ही नहीं सकता।

अभी अम्बानी ने 5000 करोड़ में अपने बेटे की शादी की। आपको क्या लगता है ये पैसा भ्रष्टाचार से कमाया है! नहीं महोदय, यह सेवा करके, धर्मादाँ काम करके कमाया गया धन है! अब कमाया है तो ख़र्च करेगा ही। आप कर सकते हो तो आप भी कर लो! इसलिए तो मैं कह रहा हूँ अडानी हो या टाटा, बिड़ला, अम्बानी, माधवी या फिर हमारे प्रधानसेवक कोई भी कभी भी भ्रष्टाचार नहीं कर सकता।

पर मेरे कहने से क्या होता है? मैं कोई भगवान थोड़े ही हूँ कि जो कहूँगा वही होगा! मोदी जी ने भी कहा था – "ना खाऊँगा, ना खाने दूँगा।" पर भाई मोदी जी भी तो इन्सान हैं! चुनाव के बाद यह पुख़्ता हो गया है! भूख तो उन्हें भी लगती होगी! अगर वह ख़ुद भूखे रहेंगे, तो सरकार भूखी रहेगी। सरकार भूखी रहेगी तो सरकार को सरकार बनाने वाले भूखे रहेंगे। इससे तो सरकार को ही समस्या हो जायेगी। इसलिए सरकार तो खाती ही है। हमेशा से ही खाती रही है। इस बार फ़र्क यह है कि सालों से भूखे लोग सत्ता में बैठे हैं, तो अपना पेट भी अच्छे से भरना चाहते हैं। सरकार का पेट भरा रहे इसलिए सबको मौका देते हैं। खाओ भाई, अच्छे से खाओ, हम मिल बाँटकर खायेंगे! जब अडानी जी और मोदी जी आगे बढ़ेंगे, तभी तो देश आगे बढ़ेगा!

माधवी जी का अडानी जी से; अडानी जी का मोदी जी से जो रिश्ता है, वह क्या कहलाता है? ये सब प्यार के रिश्ते ही तो हैं! मोदी जी 'प्यार बाँटते चलो' में यक़ीन रखते हैं! अडानी ने उन्हें थोड़ा प्यार दिया और मोदी जी ने इस प्यार के लिए पूरा देश उनपर न्यौछावर कर दिया! मोदी जी को प्यार सिर्फ़ अडानी ही नहीं बल्कि अम्बानी से लेकर टाटा-बिड़ला-हिन्दुजा जैसे सब बड़े लोग करते हैं। बदले में मोदी जी भी सबका ख़्याल रखते हैं, बोलते हैं: "जितना खाना है खाओ, मैं बैठा हूँ।" आप इस प्रेम से प्रेम करें! अगर आप नहीं करते, तो आप कैसे देशद्रोही, विदेशपरस्त और सिक्युलर व्यक्ति हैं? प्रेम से प्रेम करने पर प्रेम बढ़ता है! इसलिए यह बात समझ लें कि राष्ट्र अडानी जी, अम्बानी जी, टाटा जी, बिड़ला जी आदि की तिजोरियों में निवास करता है! उनकी लक्ष्मी ही राष्ट्र है, वही धर्म है, वही नैतिकता है, वही सबकुछ है! अब मोदी जी ठहरे पक्के राष्ट्रवादी और धर्मध्वजाधारी! तो वे राष्ट्रसेवा और धर्मसेवा नहीं करेंगे, तो क्या करेंगे?

दुकानों पर नाम लिखने का हिटलरी फ़रमान

(पेज 5 से आगे)

जबकि मामले को रफ़ा दफ़ा करने के लिये पुलिस ने बोला मोहित बीमार था।

ये महज़ चन्द उदाहरण है, जिनमें सरकार व प्रशासन द्वारा काँवड़ियों को अराजकता मचाने की छूट दी गयी। यह दर्शाता है कि काँवड़ यात्रा की आड़ में अनियन्त्रित भीड़ को पनाह देने का काम भाजपा सरकार कर रही है। साथ ही, आज के युवा नौकरी, शिक्षा और बुनियादी मुद्दों पर एकजुट ना हो जाये इसलिए सरकार ऐसी यात्राओं को हवा पानी दे रही है। ऐसी युवा आबादी का व्यवस्थित रूप से लम्पटीकरण करने में संघी फ़ासीवादी कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रहे। आने वाले विधानसभा चुनावों के मद्देनज़र अभी से साम्प्रदायिक माहौल बनाया जा रहा है।

आज महँगाई-बेरोज़गारी-भ्रष्टाचार उत्तर प्रदेश से लेकर पूरे देश में अपने चरम पर हैं। इन समस्याओं से ध्यान भटकाने के लिए ऐसे साम्प्रदायिक हथकण्डे अपनाये जा रहे हैं। भाजपा उत्तर प्रदेश के साथ-साथ पूरे देश को साम्प्रदायिक प्रयोगशाला में तब्दील करना चाहती है। संघ परिवार लम्बे समय से अपने फ़ासीवादी एजेण्डे को भाजपा समेत अपने तमाम अनुषंगी संगठनों के माध्यम से आगे बढ़ाता रहा है। यह काम तमाम प्रशासनिक संस्थाओं पर आन्तरिक क़ब्ज़े के ज़रिये और प्रशासन में अपने लोगों की पैठ बनाने के ज़रिये हुआ है। उत्तर प्रदेश में भाजपा की सरकार आने के बाद से यह गति और बढ़ी है। इसलिए जिन लोगों को लग रहा था कि लोकसभा चुनाव में सीटें कम होने के बाद भाजपा और आरएसएस "सुधर" जायेंगे या ठण्डे पड़ जायेंगे, उन्हें अब अपने भ्रम दूर कर लेने चाहिए। अततः हमें इनका मुकाबला सड़कों पर करने के लिए तैयार होने होगा। आने वाले दिनों में यह सच्चाई और भी साफ़ होती जायेगी।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।
मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।
आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016
फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
मूल्य : एक प्रति – 10/- रुपये
वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित)
आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

कांग्रेस का मज़दूर-विरोधी चेहरा फ़िर हुआ बेनकाब, कर्नाटक में काम के घण्टे बेतरह बढ़ाने की तैयारी में सरकार!

● अजित

लोकसभा चुनाव में फ़ासीवादी मोदी सरकार के विकल्प के तौर पर कांग्रेस के नेतृत्व में बनी 'इण्डिया गठबन्धन' को देखा जा रहा था। राहुल गाँधी से उम्मीदें लगाई जा रही थी। राहुल गाँधी और कांग्रेस पार्टी ने भी अपने घोषणापत्र में बड़े-बड़े वादे किये तथा उसे 'न्यायपत्र' का नाम दिया। ' 'न्यायपत्र' में और कांग्रेस की नीतियों में देश के मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए कितना न्याय मिला है यह भी सोचने का विषय है। कांग्रेस के इतिहास और नीतियों पर यदि एक निगाह डाली जाए तो इसके मज़दूर- विरोधी और मेहनतकश जनता-विरोधी चेहरे को आसानी से समझा जा सकता है। कांग्रेस हमेशा से आम तौर पर पूँजीपतियों और विशेष तौर पर बड़े पूँजीपतियों की पार्टी रही है और उनके लिए नीतियाँ बनाकर उनकी सेवा करती रही है। इसी बात का एक और ताज़ा उदाहरण कर्नाटक की कांग्रेस सरकार ने पेश किया है। कर्नाटक की कांग्रेस सरकार आईटी सेक्टर में काम के घण्टे बढ़ाने की तैयारी कर रही है। इसके तहत एक सप्ताह में 70 घण्टे और रोजाना 14 घण्टे काम करना होगा। कांग्रेस सरकार द्वारा की जा रही यह तैयारी उसके पूँजीपति परस्त और मज़दूर-विरोधी चेहरे को उजागर करती है। इसके साथ ही इस फ़ैसले से और भी कई सारी बातें हमारे सामने आती है।

यह घटना हमें बताती है कि कांग्रेस पार्टी और उसकी विभिन्न राज्य सरकारों की नीतियाँ और फ़ासीवादी मोदी सरकार की नीतियों में एक ही फ़र्क है। भाजपा पूँजीपतियों की सेवा एकदम नंगे रूप में और मज़दूरों के बर्बर दमन व शोषण का काम काफ़ी आक्रामकता और फ़ासीवादी रफ़्तार के साथ करती है जबकि कांग्रेस पार्टी यही काम अपेक्षाकृत क्रमिक प्रक्रिया में और कुछ कल्याणकारी कदमों के मुखौटे के साथ करती है। अन्य पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियाँ भी इस मसले को लेकर कुछ नहीं बोल रही हैं। यह चुप्पी हमें उनके मौन समर्थन को दिखाता है। इसके साथ ही नकली वामपन्थी पार्टियाँ भी इस मसले को लेकर केवल ज़ुबानी जमा ख़र्च ही कर रहीं हैं। उनकी तरफ़ से कोई जुझारू जनान्दोलन खड़ा करने की बात तक सामने नहीं आई है।

इस घटना पर संशोधनवादी पार्टियों के ट्रेड यूनियन की प्रतिक्रिया भी काफी ठण्डी है और मज़दूरों के बुनियादी हक़ों-अधिकारों पर इस हमले के ख़िलाफ़ वह भी केवल प्रतीकात्मक विरोध ही कर रहे हैं। इस बात से उनके चरित्र का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। आईटी सेक्टर में काम के घण्टे बढ़ाने की तैयारी हमें यह भी बताती है कि आईटी सेक्टर भी अपने सन्तृप्ति बिन्दु पर पहुँच चुका है। इस सेक्टर में भी संकट के बादल मण्डरा रहे हैं। पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े की गिरती औसत दर ही संकट कहलाती है जिससे बचने के लिए बड़ी-बड़ी आईटी कम्पनियाँ सरकारों पर दबाव बना रही है। इसी दबाव का नतीजा है कि कर्नाटक की सरकार काम के घण्टे बढ़ाने की तैयारी में है।

काम के घण्टे बढ़ने से कम्पनियों में तीन शिफ्ट की जगह दो शिफ्ट में ही काम होगा जिससे कि अभी काम कर रहे कुल मज़दूरों के एक-तिहाई हिस्से को बाहर कर दिया जाएगा। बेरोज़गारों की 'रिजर्व आर्मी' में बढ़ोतरी होगी जिसका दूरगामी फ़ायदा भी इन्हीं कम्पनियों को होगा। इसके साथ ही कम्पनियाँ आईटी सेक्टर के मज़दूरों को बिना ओवर टाइम रेट दिए उनसे अतिरिक्त काम करवा सकती है। करीब 140 साल पहले दुनिया के लाखों मज़दूरों के संघर्ष व कुर्बानी के बाद 8 घण्टे काम का हक़ हासिल हुआ था। यह बुनियादी हक़ भी आज मज़दूर वर्ग से छीना जा रहा है।

कर्नाटक की कांग्रेस सरकार द्वारा आईटी सेक्टर में काम के घण्टे बढ़ाने की तैयारी के निहितार्थ हमारे सामने हैं। हमें इसके ख़िलाफ़ एक जुझारू संघर्ष खड़ा करना होगा। केन्द्रीय ट्रेड यूनियन के अर्थवादी रवैये, मज़दूर-विरोधी चेहरे और मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी को समझना होगा। इसके विकल्प में एक क्रान्तिकारी यूनियन का गठन करना होगा जोकि एक जुझारू मज़दूर आन्दोलन खड़ा कर सके। इसके साथ ही हमें यह भी जान लेना चाहिए कि कोई भी पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टी हमारे हक़ों-अधिकारों के लिए नहीं लड़ेगी चाहे वह कांग्रेस हो या अन्य क्षेत्रीय पार्टी। ये पार्टियाँ फ़ासीवादी मोदी सरकार का विकल्प नहीं हो सकतीं क्योंकि इनकी आर्थिक नीतियों में बुनियादी रूप से कोई फ़र्क नहीं है, सिर्फ़ रफ़्तार और दर का फ़र्क है। केवल एक क्रान्तिकारी पार्टी के नेतृत्व में जनता का जुझारू राजनीतिक आन्दोलन और एक समाजवादी व्यवस्था ही उसका विकल्प हो सकती है।

सक्षम आँगनवाड़ी और पोषण 2.0 का अक्षम और कुपोषित बजट

● वृषाली

लोकसभा चुनावों में "अबकी बार - 400 पार" के नारे की दुर्गति के बाद मोदी सरकार 3.0 बैसाखी के सहारे सत्ता में आयी। इसके साथ ही भाजपा के तीसरे कार्यकाल की शुरुआत में पेश हुए बजट ने सरकार की आने वाले 5 साल का ट्रेलर और पिछले 10 सालों का फ्लैशबैक दिखा दिया है। निर्मला सीतारमण लगातार 7वीं बार बजट पेश करने वाली पहली वित्त मन्त्री बन गई हैं। लेकिन बजट पिछले 10 सालों की ही तरह मेहनतकशों के लूट और कॉरपोरेट घरानों, धन्नासेठों के लिए छूट का दस्तावेज़ ही है।

भाजपा लम्बे समय से महिला "सशक्तिकरण" के शिगूफ़े उछाल रही है। वित्त मन्त्री निर्मला सीतारमण ने 23 जुलाई को लोकसभा में बजट पेश करते हुए कहा कि केन्द्रीय बजट 2024-25 में महिलाओं और लड़कियों को लाभ पहुँचाने वाली योजनाओं और महिलाओं के नेतृत्व वाले विकास को बढ़ावा देने के लिए 3 लाख करोड़ रुपये से अधिक का आबण्टन किया गया है। लेकिन पिछले 10 सालों का रिकॉर्ड देखा जाये तो भाजपा के सत्तासीन होने के बाद कल्याणकारी स्कीमों पर होने वाले वास्तविक ख़र्च में लगातार कमी आयी है। एक ओर भाजपा यह दावा करती है कि प्रधानमन्त्री ग़रीब कल्याण योजना के तहत 80 करोड़ आबादी को 5 किलो खाद्यान्न उपलब्ध कराया गया है। लेकिन दूसरी ओर खाद्यान्न सब्सिडी पर जहाँ 2019-20 में केन्द्रीय बजट का 6.61% का ख़र्च तय किया गया था, इस वर्ष इसे घटाकर 4.5% कर दिया गया है।

विश्व भूख सूचकांक 2023 में भारत के स्थान (125 देशों में 111वाँ स्थान) को झुठलाने की तमाम कोशिशों में लगी भारत सरकार का बजट कुछ और ही हक़ीक़त बयां करता है। भूखमरी और कुपोषण के ख़िलाफ़ समेकित बाल विकास परियोजना बेहद ज़मीनी स्तर की योजना है। इसका एक मुख्य लक्ष्य है बच्चों, गर्भवती और दूध पिलाने वाली महिलाओं को ज़रूरी पोषाहार मुहैया करना। वर्ष 2013-14 में समेकित बाल विकास परियोजना को बजट का 0.95% हिस्सा आबण्टित किया गया था। मोदी सरकार के कार्यकाल के दौरान समेकित बाल विकास परियोजना और प्रधानमन्त्री मातृ वन्दना योजना को जोड़ कर सक्षम आँगनवाड़ी, पोषण 2.0 व सामर्थ्य प्रोग्राम में तब्दील कर दिया गया है। इस विलय के बाद इन सभी योजनाओं पर होने वाले ख़र्च को लगातार कम किया गया है। **समेकित बाल विकास परियोजना** पर इस वर्ष महज़ **0.45 फ़ीसदी** ख़र्च आबण्टित किया गया है। सिर्फ़ **पोषाहार** की बात करें तो एक अनुमान के अनुसार इसके लिए (राज्य सरकारों के फ़ण्ड समेत) तक़रीबन **42,033 करोड़ रुपये** राशि की ज़रूरत है, जबकि महिला एवं बाल विकास मन्त्रालय को कुल आबण्टित की गयी राशि ही **26,092 करोड़ रुपये** है, **सक्षम आँगनवाड़ी और पोषण स्कीम को 21,200 करोड़ रुपये** की राशि आबण्टित की गयी है। सरकार की इसी वर्ष की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 6 महीने से 6 साल के बीच के 13.7 करोड़ बच्चों में से 8.9 करोड़ बच्चे आँगनवाड़ी केन्द्रों में दर्ज हैं। कुल मिलकर समेकित बाल विकास परियोजना के तक़रीबन 10.01 करोड़ लाभार्थी हैं। वर्ष 2017 से सरकार ने लाभार्थियों पर किया जा रहा औसतन ख़र्च 8 रुपये प्रति दिन प्रति व्यक्ति ही तय किया हुआ है। उसी तरह प्रधानमन्त्री मातृ वन्दना योजना के तहत मिलने वाली 6,000 रुपये की राशि वर्ष 2013 से उतनी ही चली आ रही है। सकल घरेलू उत्पाद के हिस्से के रूप में देखें तो मनरेगा, प्रधानमन्त्री मातृ वन्दना योजना, मिड-डे-मील, समेकित बाल विकास परियोजना जैसे कल्याणकारी योजनाओं पर ख़र्च लगतार ही कम होता गया है। इसमें अगर महँगाई दर को जोड़ दिया जाये तो यह ख़र्च और कम ही हो जाता है। यही नहीं, आबण्टित की गयी राशि भी पूर्ण रूप से इस्तेमाल कर ही ली जाएगी, इसकी भी कोई गारण्टी नहीं है। महिला एवं बाल विकास मन्त्रालय की ही एक रिपोर्ट के अनुसार **वर्ष 2022-23 में आबंटित की गयी राशि का केवल 73.42 फ़ीसदी** हिस्सा ही इस्तेमाल किया गया। महिला एवं बाल विकास मन्त्रालय के ही 2023 के वार्षिक रिव्यू रिपोर्ट के अनुसार आँगनवाड़ी केन्द्रों के निर्माण की राशि को 7 लाख से बढ़ाकर 12 लाख, शौचालय के निर्माण के लिए तय राशि को 12,000 से बढ़ा कर 36,000 और पेय जल की उपलब्धता के लिए तय राशि को 10,000 से बढ़ा कर 17,000 रुपये कर दिया गया। लेकिन लाभार्थियों के पोषाहार पर ख़र्च होने वाले समेत स्कीम वर्करों के मानदेय राशि में इज़ाफ़ा करने का ख़याल भाजपा सरकार को नहीं आया!

नयी शिक्षा नीति 2020 के तहत शिक्षा के निजीकरण को बढ़ावा देने की स्कीम में आँगनवाड़ीकर्मियों के श्रम की लूट का भी हिस्सा है। 'पोषण भी – पढ़ाई भी' योजना मोदी सरकार के पिछले कार्यकाल में ही शुरू कर दिया गया था। इसके अनुसार आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को अब औपचारिक प्राथमिक शिक्षा का भार उठाना पड़ेगा। ज़ाहिरा तौर पर कार्यकर्ताओं का बोझ बढ़ेगा, मानदेय नहीं! एक रिपोर्ट के अनुसार जुलाई 2023 में पोषण ट्रैकर ऐप से जुटाया गया आँकड़ा यह बताता है कि महराष्ट्र, ओड़ीसा, राजस्थान और तेलंगाना में लाभार्थी और आँगनवाड़ी कार्यकर्ता का अनुपात क्रमशः 67.7, 55.4, 75.6 और 64.5 है। आबादी की ज़रूरत के अनुसार नये केन्द्र खोले जाने, खाली पड़े पदों की भर्ती इत्यादि पर महिला एवं बाल विकास मन्त्रालय का कोई ठोस कार्यक्रम नहीं है।

भाजपा के कार्यकाल में आँकड़ों की बाज़ीगरी करने में महिला एवं बाल विकास मन्त्रालय भी किसी से पीछे नहीं है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण - 5 के अनुसार 5 वर्ष से कम की उम्र के भारत में 35.5% बच्चों की लम्बाई और 19.3% बच्चों का उम्र के अनुसार वज़न कम हैं और 32.1% बच्चे कमज़ोर हैं। लेकिन महिला एवं बाल विकास मन्त्रालय का दावा है कि यह सरकारी आँकड़े ही झूठे हैं और पोषण ट्रैकर ऐप में दर्ज किये गये आँकड़ों से यह मेल नहीं खाते!

1975 से लागू हुई समेकित बाल विकास परियोजना का मक़सद था बेहद सस्ती दरों पर बच्चों, गर्भवती महिलाओं आदि की देखरेख व पोषण तथा बुनियादी शिक्षा मुहैया कराना ताकि श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन पर पूँजीपति वर्ग का ख़र्च कम किया जा सके। इस स्कीम में ज़मीनी स्तर पर कार्यरत महिलाओं को "सशक्त" करने के नाम पर उनके श्रम की लूट लम्बे समय से चली आ रही है। आज के समय में आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को 25 अलग-अलग कार्यभार सौंपे हुए हैं। लेकिन मानदेय की राशि, पेंशन, ग्रैच्युटी, इत्यादि पर कोई सरकार कुछ ख़र्च नहीं करना चाहती। भाजपा सरकार ने तो अपने पूरे कार्यकाल के दौरान एक ही रुख़ अपनाया है – पुरानी घोषणाओं को ही हर साल दोहराते रहो, लेकिन उन्हें किसी भी क़ीमत पर लागू नहीं करो! प्रधानमन्त्री महोदय ने 2018 में पोषण 2.0 स्कीम लॉंच की थी। उसी साल सभी स्कीम वर्करों के मानदेय में, बेहद मामूली, बढ़ोत्तरी की घोषणा हुई। तब से लगातार वही घोषणा दुहरायी जाती रही लेकिन वह अब तक लागू नहीं हुई! उसी तरह अब स्कीम वर्करों को हाथ में 'आयुष्मान भारत' का झुनझुना थमा दिया गया है और सरकारी वक्तव्य में 2018 के मानदेय बढ़ोत्तरी के "ऐतिहासिक" क़दम का ही फिर से गुणगान कर दिया गया है। मोदी 3.0 में इसी "गारण्टी" की उम्मीद की जा सकती है!

नोएडा-ग्रेटर नोएडा में अँधेरे में रहने को मजबूर लाखों मेहनतकश

राष्ट्रीय राजधानी से सटे शहर में बिना बिजली कनेक्शन के रह रहे लाखों परिवार

● रूपेश

जैसे ही आप दिल्ली से नोएडा में प्रवेश करते हैं, चौड़ी सड़कें और आलीशान इमारतें आपका स्वागत करती हैं। यदि आप कालिन्दी कुंज की तरफ़ से नोएडा में प्रवेश करेंगे तो 'सुपरनोवा' नाम की गगनचुम्बी इमारत आपका स्वागत करेगी जो शायद राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की सबसे ऊँची इमारत है। अगर रात में आप नोएडा-ग्रेटर नोएडा में प्रवेश करते हैं तो रौशनी की चमचमाहट से चमकते मॉल और इमारतें आपको 'विकास' की कहानी बयान करती मिल जाएँगी। इन तमाम देशी-विदेशी कम्पनियों के बड़े-छोटे प्लाण्ट नोएडा-ग्रेटर नोएडा के औद्योगिक क्षेत्रों में चल रही हैं जिनमें लाखों की संख्या में मज़दूर काम करते हैं, जो देश के तमाम इलाक़ों से होते हैं।

नोएडा के 'विकास' की कहानी

आज से लगभग पचास साल पहले जब 'नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण (NOIDA)' की योजना बनी थी तो मुख्य तौर पर औद्योगिक विकास पर ही योजनाकारों का 'फोकस' था। जब फैक्ट्रियाँ लगनें लगीं तो उनमें काम करने वाले मज़दूर आस-पास के गाँवों में किराये पर रहने लगे। जैसे-जैसे 'विकास' की गति तेज़ होती गयी मज़दूरों की आबादी बढ़ती गयी। अब एक बड़ी आबादी औद्योगिक सेक्टरों के बीच में झुग्गी बनाकर रहने लगी। 1991 में उदारीकरण और निजीकरण की नीतियाँ लागू होने के बाद नोएडा का तेजी से 'विकास 'हुआ'। विशेष औद्योगिक क्षेत्र (SEZ) का नोएडा में निर्माण हुआ। औद्योगिक विकास के साथ-साथ नोएडा प्राधिकरण आवासीय सेक्टरों को भी विकसित कर रही थी जिसमें एक बड़ी मध्यवर्गीय आबादी रहने आयी। सन् 2000 के बाद नोएडा-ग्रेटर नोएडा के 'विकास ' के अगले चरण की शुरुआत होती है। यही वह समय था जब औद्योगिक विकास के साथ-साथ आवासीय क्षेत्र के विकास में रियल एस्टेट प्रवेश करता है। नोएडा-ग्रेटर नोएडा एक्सप्रेस वे के दोनों किनारे, नोएडा के अलग-अलग सेक्टरों में, ग्रेटर नोएडा तथा ग्रेटर नोएडा वेस्ट के अलग-अलग हिस्सो में तेजी से गगनचुम्बी इमारतों वाली आवासीय कॉलोनियों का विकास हुआ। देश के सबसे बड़े मॉल तथा सुपर मार्केट का निर्माण हुआ। आज नोएडा-ग्रेटर नोएडा के 'विकास' की चमक को देखकर किसी की भी आँखें चौंधिया सकती है।

इस 'विकास' की दूसरी तस्वीर

पर आइये अब हम आपको 'विकास' की एक दूसरी तस्वीर दिखाते हैं। जब उपरोक्त सारी परिघटनाएँ घटित हो रही थी, उसी के साथ-साथ एक अन्य परिघटना भी घटित हो रही थी। जैसे-जैसे नोएडा-ग्रेटर नोएडा के औद्योगिक क्षेत्रों में कम्पनियों का विस्तार हो रहा था वैसे-वैसे इन इलाक़ों में मेहनतकशों की संख्या भी तेज़ी से बढ रही थी। गगनचुम्बी आवासीय सेक्टरों के निर्माण के बाद मेहनतकशों की एक बड़ी आबादी, इसमें रहने वाली मध्यवर्गीय-उच्च मध्यवर्गीय आबादी के घरेलू कामों में भी लगी।

शहर की 'विकास' योजना बनाने वाले योजनाकारों के पास इन लाखों मेहनतकशों के आवास के लिए कोई योजना नहीं थी। अब मैदान में उतरते हैं छोटे कॉलोनाइजर और प्रॉपर्टी डीलर! इन्होने किसानों से ज़मीनें खरीद कर कॉलोनियाँ काटी तथा छोटे-छोटे प्लाट काटकर मज़दूरों को बेच दिया। इसी तरह की दो दर्जन से ज्यादा कॉलोनियाँ हिण्डन नदी के दोनों तरफ बसी हैं। छिजारसी, चोटपुर, बहलोलपुर, पर्थला, खंजरपुर, सोरखा, ककराला इत्यादि नोएडा में तथा कुलेसरा, सुत्याना, लखनावली, जलपुरा आदि ग्रेटर नोएडा में ऐसे गाँव हैं जहाँ कई लाख मेहनतकश परिवार रह रहे हैं। इन कॉलोनियों में किसी प्रकार की कोई बुनियादी सुविधा नहीं है।

बिना बिजली के रहने को मजबूर लाखों लोग

इन बुनियादी समस्याओं में सबसे प्रमुख है बिजली की समस्या। राष्ट्रीय राजधानी से सटे हुए इन इलाक़ों में लाखों परिवार बिना बिजली कनेक्शन के रहने को मजबूर हैं। जी हाँ! आपने बिलकुल सही पढ़ा, लाखों परिवार नोएडा-ग्रेटर नोएडा में बिना बिजली के नरक से भी बदतर ज़िन्दगी जीने को मजबूर हैं। 2024 में देश की राजधानी के सबसे 'विकसित' जगह पर कोई ऐसी ज़िन्दगी जी रहा हो यह शायद कई लोगों के लिये मानना भी मुमकिन न हो। लेकिन हक़ीक़त यह है की नोएडा की भयंकर गर्मी में भी ये लोग बिना बिजली के अँधेरे में रहते हैं। देश में इस बार जैसी गर्मी पड़ी वह तो सबको पता ही है। ऐसी गर्मी में दिल्ली-एनसीआर के लोगों के दिमाग में एक सुकून होता है कि रात जब घर जायेंगे तो कम से कम पंखे के नीचे चैन की नींद लेंगे। पर नोएडा-ग्रेटर नोएडा के इन लाखों लोगों को यह भी नसीब नहीं। इतना ही नहीं, बिजली नहीं होने पर पानी की भी एक भयंकर समस्या रहती है। लोगों को मजबूरी में रोज़ के इस्तेमाल के लिये भी पानी कई बार ख़रीद कर लेना पड़ता है। यही कारण है कि कई बार भयंकर गर्मी से लोगों की जान तक चली जाती है।

बिजली की समस्या को लेकर लोगों का संघर्ष

ऐसा नहीं है कि इस समस्या का संज्ञान प्रशासन, सरकार या बिजली विभाग को नहीं है। यहाँ रहने वाले लोग स्थानीय प्रशासन, बिजली विभाग, 'जनप्रतिनिधियों' के पास बरसों से दौड़-भाग करके थक चुके हैं। आश्चर्य की बात है कि बगल में ही संसद भवन है मगर आजतक वहाँ इतनी बड़ी आबादी की समस्या पर कोई चर्चा नहीं हुई। अभी इसी नोएडा-ग्रेटर नोएडा में स्थित किसी पूँजीपति के उपर कोई संकट आ जाए तो स्थानीय प्रशासन से लेकर राजधानी तक के लोग परेशान हो जाएँगे।

पिछले साल इस समस्या को लेकर लोगों का ग़ुस्सा स्वतःस्फूर्त तरीक़े से सड़कों पर फूट पड़ा था जिसके बाद कुछ लोगों ने इसमें आगे बढ़कर अगुवाई करने की कोशिश की थी। लेकिन एक सही दिशा की कमी और कुछ लोगों के अवसरवाद के कारण वह किसी नतीजे पर नही गया। बीते 25 जून को फ़िर से लोगों का ग़ुस्सा फूटा। कुलेसरा तथा सुत्याना के लोगों ने मिलकर गौतम बुद्ध नगर के जिलाधिकारी के कार्यालय पर बिजली कनेक्शन के लिए जबरदस्त प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन की अगुवाई भी तब वही कर रहे थे, लेकिन वो इसे सही तरीक़े से आयोजित करने में असफल रहे जिसकी वजह से पूरे प्रदर्शन के दौरान अफरातफरी का माहौल बना रहा। जिलाधिकारी तथा बिजली विभाग के अधिकारी ने कुछ मौखिक आश्वासन दिये पर पूरे प्रदर्शन के दौरान लोगों का यही कहना था कि राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण (NGT) में एक केस चल रहा है जिसकी वजह से हिण्डन किनारे की कॉलोनियों में बिजली नहीं दी जा रही। अर्थात ऐसे मौखिक आश्वासन से कुछ नही हो सकता।

प्रदर्शन के समापन के बाद से अगुवाई करने वाली टीम के कुछ लोग NGT में जाने की तैयारी में लग गये। लोगों से पिटीशन पर साइन करवाने की शुरुआत हो गयी मगर काग़जी तैयारी में पुरानी टीम के अवसरवादी लोगों ने सहयोग करना बन्द कर दिया। बचे हुए लोगों ने एक पर्चा निकाला और जनता के बीच अपनी बात लेकर गये तथा 28 जुलाई को एक विशाल जनसभा का कुलेसरा में आयोजन किया गया। इस जनसभा में 'एकता संघर्ष समिति' का गठन करके बिजली कनेक्शन की लड़ाई को सही तरीक़े से आगे बढाने का संकल्प लोगों ने लिया। तब से अलग-अलग कॉलोनियों में लगातार मीटिंग की जा रही है। वॉलंटियर की टीम बनायी जा रही है। 7अगस्त को नयी टीम ने NGT में पिटीशन दायर कर दिया। अभी उतार-चढ़ाव भरा एक लम्बा सफर तय करना है। उम्मीद है कि लोग एकजुट होकर इस लड़ाई को अंजाम तक पहुँचाएँगे।

मूल समस्या क्या है और आख़िर रास्ता क्या है?

अभी तक इन कॉलोनियों के लोग स्थानीय दलाल किस्म के लोगों के नेतृत्व में स्थानीय प्रशासन तथा 'जनप्रतिनिधियों' की परिक्रमा करते रहे थे। लोगों ने कभी एक मज़बूत इलाक़ाई संगठन बनाकर इस समस्या के समाधान का प्रयास नहीं किया था। अगर लोग सही तरीक़े से संगठित होकर अपने अधिकार के लिए आवाज़ उठायेंगे तो बिजली जैसी बुनियादी सुविधा देने से कोई इन्कार नहीं कर सकता। 2022 में पंजाब उच्च न्यायालय ने भी यह फ़ैसला सुनाया था कि बिजली एक बुनियादी ज़रूरत है और संविधान के अनुच्छेद 21 में दिये जीवन के अधिकार का अभिन्न अंग है। आज हिण्डन नदी के किनारे बसी दो दर्जन से ज्यादा कॉलोनियों के निवासियों के सामने एक ही रास्ता है– संघर्ष का रास्ता। बिना सही तरीक़े से संगठित हुए कोई भी संघर्ष नहीं जीता जा सकता है। यह आज हो भी रहा है, लेकिन हमें इसके कारणों को भी समझना होगा कि आख़िर क्यों प्रशासन और सरकार लाखों लोगों की बुनियादी समस्याओं पर ज़रा भी ध्यान नहीं देती?

इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि यहाँ रहने वाले ज़्यादातर लोग मेहनत-मज़दूरी करने वाले लोग हैं। और आज हम जिस व्यवस्था में जी रहे हैं उसमें मज़दूरों को महज़ काम करने की मशीन समझा जाता है तथा उन्हें कीड़े-मकोड़ों के तरह जीने के लिये छोड़ दिया जाता है। बात सिर्फ़ बिजली समस्या की नहीं है। आज उन तमाम बुनियादी समस्याओं के लिये भी हमें लड़ना और संगठित होना होगा जो हमसे छीनी जा रही हैं। बिजली समस्या की इस लड़ाई को आगे बढ़ाकर इसे आम मज़दूरों की ज़िन्दगी से भी जोड़ना होगा, उन समस्याओं को भी उठाना होगा और लोगों को एकजुट और संगठित करना होगा तभी जाकर असल मायने में हर तरह की दिक़्क़तों का निवारण किया जा सकता है।

पूँजीपतियों से यारी है मज़दूरों से ग़द्दारी है!

मौजूदा बजट में मनरेगा के लिए आवण्टन से मनरेगा मज़दूरों को सिर्फ 40 दिन ही काम मिलेगा।

100 दिन के रोजगार की गारण्टी का वादा कहाँ गया?

25 जुलाई। ज्ञात हो कि 23 जुलाई को केन्द्रीय वित्त मन्त्री निर्मला सीतारमण ने आम बजट पेश किया। इस बजट ने एक बार फिर मोदी सरकार के मजदूर-विरोधी चेहरे को उजागर कर दिया। गोदी मीडिया इस बजट को भी पूरा बढ़ा-चढ़ाकर पेश कर रही है ताकि सरकार की सभी कमियों को छुपाया जा सके। लेकिन सरकार चाहे कितना भी ज़ोर क्यों न लगा ले हक़ीक़त सामने आ ही जाती है। ध्यान रहे कि मनरेगा एक्ट की स्थापना के बाद से पहली बार ऐसा हुआ है कि केन्द्र सरकार के बजट भाषण में मनरेगा का एक भी उल्लेख नहीं मिला है।

वहीं मनरेगा राशि की बात करें तो मनरेगा बजट के लिए 86000 हजार करोड़ आबण्टित किये गये हैं जो वित्तीय वर्ष 2023-24 के मद 1,05,299 करोड़ रुपये के वास्तविक व्यय से 19,298 करोड़ रुपये कम है। वहीं कुल जीडीपी के प्रतिशत के रूप में वित्त वर्ष 24-25 के लिए आबण्टन केवल 0.26 प्रतिशत के आसपास है। इस बजट कटौती का सीधा अर्थ है मजदूरों के कार्यदिवस की कटौती।

पिछले 5 वर्षों के आँकड़े देखे जाए तो मनरेगा योजना में प्रति परिवार प्रदान किये गये रोजगार के दिनों की औसत संख्या केवल 45 से 55 दिनों के बीच रही है, कायदे से अगर सरकार को 100 दिन रोजगार देने का वादा पूरा करना है तो उसको 2.70 लाख करोड़ से ज्यादा के बजट का प्रावधान करना चाहिए। साफ तौर पर रोज़गार गारण्टी के तहत काम ना देना व बेरोज़गारी भत्ता ना देना मनरेगा क़ानून का उल्लंघन है। आज हर जगह श्रम क़ानूनों की धजियाँ उड़ाते हुए मज़दूरों से हाड़-तोड़ मेहनत करवाई जा रही है। लम्बे-चौड़े दावे करने वाली मोदी सरकार मनरेगा मज़दूरों को किसी भी प्रकार की सुविधा नहीं दे पा रही। यूँ तो सरकार मनरेगा में 100 दिन के काम की गारण्टी देती है लेकिन वह अपने वायदे पर कहीं भी खरी नहीं उतरती।

क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन के साथी अजय ने बताया कि यूँ तो भारतीय संविधान में भी अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार की बात की गई है। जीवन के अधिकार का सीधा मतलब रोजगार की गारण्टी है, लेकिन मनरेगा एक्ट में गारण्टी के बावजूद बड़ी ग्रामीण आबादी बेरोजगारी की मार झेल रही है। मनरेगा में पहले से ही बजट की कमी के साथ धाँधली होने का आरोप लगता रहा है। वैसे भी गाँव में मनरेगा मज़दूरों की संख्या बढ़ने से मनरेगा पर भार बढ़ना लाज़िमी है। ऐसे में सरकार को कायदे से मनरेगा के बजट, कार्यदिवस व दिहाड़ी में बढ़ोत्तरी करनी चाहिए थी। लेकिन मोदी सरकार ने उल्टा मनरेगा बजट में कटौती कर मज़दूरों के हालातों को और बदतर बनाने योजना बना रखी है। इस बजट में एक तरफ तो मोदी सरकार कॉरपोरेट टैक्स में भारी छूट दे रही है वहीं दूसरी तरफ जनता पर करों का बोझ बढ़ाकर महँगाई का बोझ लाद रही है। क्रान्तिकारी मनरेगा मजदूर यूनियन, मोदी सरकार के मज़दूर विरोधी बजट के ख़िलाफ़ अपना रोष प्रदर्शन करेगी।

– क्रान्तिकारी मनरेगा यूनियन, हरियाणा

जलवायु परिवर्तन और ग़रीब मेहनतकश आबादी

● अपूर्व

कुछ दशकों पहले तक लोग यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि सर्दी,गर्मी और बरसात का मौसम उनकी रोज़ी-रोटी पर संकट खड़ा कर सकता है! साँस लेने की हवा उनके फेफड़ों में ज़हर घोल सकती है और पीने का पानी उनकी जान ले सकता है! लेकिन यह हो रहा है और बहुत तेज़ गति से हो रहा है! जिसे हम आज ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु परिवर्तन या पर्यावरणीय विनाश के रूप में देख रहे हैं, वह इसी प्रक्रिया का नाम है।

1850 के बाद से पिछला वर्ष (2023) सबसे गर्म वर्ष घोषित हुआ था! तो वहीं इस साल गर्मियों में लू का शिकार हज़ारों की आबादी हुई। गर्मी और हीटवेव यानी लू से लाखों दिहाड़ी मज़दूरों से लेकर रेहड़ी-ठेला लगाने वाले, रिक्शा चलाने वाले, डिलिवरी (सप्लाई) का काम करने वाले हज़ारों लोगों के सामने रोज़ी-रोटी का संकट खड़ा कर दिया था! कुछ राज्यों में जहाँ एक तरफ लू ने लोगों की ज़िन्दगी को मुश्किल में डाल रखा था तो वहीं दूसरी तरफ पूर्वोत्तर के असम से लेकर दक्षिण के केरल में बारिश,बाढ़,अतिवृष्टि और भूस्खलन से लाखों लोगों को मौत, तबाही और विस्थापन आदि झेलना पड़ा है। बरसात का मौसम भी पहाड़ी राज्यों से लेकर मैदानी इलाक़ों तक में कहर की तरह बरसा है। उत्तराखण्ड, हिमाचल से लेकर जम्मू-कश्मीर ,लेह-लद्दाख तक भारी बारिश भूस्खलन से सैकड़ों लोग मारे गये! लोगों के घर, खेत, फसलें, व्यवसाय आदि तबाह हो गए! इन प्राकृतिक आपदाओं के जो शिकार हुए हैं वह आम मेहनतकश अवाम हैं। इन आपदाओं में उन्हीं की रोज़ी-रोटी छिनी! उन्हीं का घर तबाह हुआ! वही भूस्खलन में दबे-कुचले और वही बाढ़ से विस्थापित हुए!

कहने को तो यह प्राकृतिक आपदाएँ हैं लेकिन ये आपदाएँ प्रकृति ने नहीं बल्कि पूँजीपति वर्ग, उसके मुनाफे की अन्धी हवस और पूँजीवादी व्यवस्था की देन हैं। पूँजीवादी-साम्राज्यवादी मीडिया, उसके भोंपू, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और निगमों के टुकड़ों पर पल रहे तमाम चाटुकार बुद्धिजीवियों तक ने अपने तमाम उपाय लगाकर, ग़लत-सलत तथ्यों और उनके आधारहीन विश्लेषणों के द्वारा इस बात को भरसक छिपाने का प्रयास करते हैं कि इन आपदाओं के मूल कारक पूँजीवादी व्यवस्था पर पर्दा डालकर इसकी तोहमत या तो स्वयं प्रकृति पर या आम जनता (जिसे मानव जनित आपदा के नाम पर प्रचारित किया जाता है) पर मढ़ दिया जाये! लेकिन लाख कोशिशों के बाद भी आज ग्लोबल वार्मिंग और उससे पैदा हुई पर्यावरणीय तबाही के वास्तविक कारणों को छिपा पाना बिल्कुल असम्भव हो गया है। यहाँ तक कि बहुत सारी पूँजीवादी संस्थाओं को दबी जुबान से ही सही लेकिन यह स्वीकार करना पड़ा है कि जलवायु परिवर्तन के कारण घटित होने वाली आपदाएँ पूँजीवादी व्यवस्था की अराजकता और पूँजीपतियों के मुनाफे की अन्धी हवस के कारण हो रही हैं!

आज ग्लोबल वार्मिंग हमारी ज़िन्दगी को अप्रत्यक्ष नहीं बल्कि प्रत्यक्ष तौर पर प्रभावित कर रहा है। इसके प्रभाव पर बात करने से पहले ये जान लेते हैं कि ये है क्या? सीधे और आसान शब्दों में बात की जाए तो जैसे हम ठण्ड से बचने के लिए कम्बल ओढ़ते हैं, कम्बल के अन्दर गर्मी बनी रहती है, वह गर्मी को बाहर नहीं निकलने देती है, ठीक उसी तरह से पृथ्वी के वायुमण्डल में कुछ गैसें कम्बल का काम करती हैं, जो सूर्य से आने वाली गर्मी को तो पृथ्वी पर रोक देती हैं लेकिन वायुमण्डल से गर्मी को निकलने नहीं देतीं! जैसे-जैसे इन गैसों की मात्रा बढ़ती जाती है, पृथ्वी का तापमान बढ़ता जाता है। इन गैसों में मुख्य है कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, क्लोरोफ्लोरो कार्बन, नाइट्रस ऑक्साइड आदि! यदि यही प्रक्रिया एक हद से ज़्यादा बढ़ जाये, तो इसका विनाशकारी असर पृथ्वी पर पड़ता है। इसका प्रभाव फिर ग्लेशियरों के तेज़ी से पिघलने, सूखा, बाढ़, अतिवृष्टि, कहीं अत्यधिक गर्मी और कहीं अत्यधिक ठण्ड के रूप में देखने को मिलती है। वास्तव में, यह हद आज पूँजीवादी मुनाफ़े की हवस और लूट के कारण ही पार हो रही है। इन आपदाओं को और भी विनाशकारी बनाने के लिए पूँजीपति वर्ग द्वारा अन्धाधुन्ध जंगलों की कटान से लेकर खनिजों का उत्खनन और जैविक ईंधनों का बेहिसाब दोहन तक सब शामिल है जो इस जलवायु परिवर्तन की गति को और तेज़ कर देते हैं।

पिछले वर्ष ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट ने सबको चौंकाते हुए यह आँकड़ा पेश किया कि दुनिया की सबसे अमीर एक प्रतिशत आबादी ने 2019 में उतना ही कार्बन प्रदूषण पैदा किया जितना की 5 अरब लोगों ने किया, जो मानवता की सबसे ग़रीब दो-तिहाई आबादी का हिस्सा हैं। इन अमीरों द्वारा उत्सर्जित किये गये कार्बन की मात्रा के कारण 13 लाख लोगों की गर्मी से सम्बन्धित अतिरिक्त मौतें हो सकती हैं! इनमें से ज़्यादातर मौतें 2020 से 2030 के बीच होंगी। ये मौतें केवल गर्मी से होने वाले प्रभाव के कारण होंगी। इस गर्मी से पृथ्वी पर जो प्राकृतिक आपदाएँ होंगी वह अलग है!

अब एक नज़र इस पर डालते हैं कि गर्मी का मेहनतकशों-मज़दूरों के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है! संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के मुताबिक़ हर साल भीषण गर्मी के चलते दुनिया भर में करीब 2 करोड़ 30 लाख मज़दूर काम के दौरान चोटिल होते हैं। इसकी वजह से सालाना 18970 लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है। वहीं 21 लाख मज़दूर किसी न किसी विकलांगता के शिकार हो जाते हैं। गर्मी से दो करोड़ से ज़्यादा लोग किडनी से जुड़ी बीमारियों के मरीज हो जाते हैं। एक करोड़ 60 लाख मज़दूर सूर्य से आने वाले अल्ट्रावॉयलेट रेडिएशन (यूवी) के सम्पर्क में आते हैं जो कहीं ना कहीं हर साल त्वचा सम्बन्धी कैन्सर के लिए ज़िम्मेदार है। सिर्फ इतना ही नहीं पूँजीपतियों के मुनाफ़े के कारखाने, जो चौबीसों घण्टे धुँआ छोड़ते रहते हैं, उस वायु प्रदूषण से हर साल 8 लाख सत्तर हजार मेहनतकश अपनी जान से हाथ धो लेते हैं। पर्यावरणीय तबाही किसानों को भी तबाह कर रही है। दुनिया भर में 87 करोड़ से ज़्यादा किसान और खेतिहर मज़दूर कीटनाशकों के सम्पर्क में आते हैं जो हर साल 3 लाख से ज़्यादा ज़िन्दगियों को निगल रहा है। करीब 2 लाख लोग स्वच्छ पानी न मिलने के चलते हर साल अपनी जान गवाँ देते हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण आने वाली प्राकृतिक आपदाओं में 1991 से अब तक विकासशील देशों में बाढ़, सूखा, अतिवृष्टि, भूस्खलन आदि से औसतन 18 करोड़ 90 लाख लोग प्रतिवर्ष प्रभावित हुए हैं। हमारे देश में पिछले कुछ सालों में हर तरह के प्रदूषण के कारण प्रतिवर्ष 25 लाख से ऊपर लोगों की मौत होती गई है।

इन प्रदूषणों की मार सबसे अधिक ग़रीब मेहनतकश आबादी पर ही पड़ी है। क्योंकि पूँजीपति वर्ग के पास तो पानी से लेकर हवा तक को साफ करने के प्यूरीफायर मौजूद हैं! रसायन मुक्त, कीटनाशक मुक्त ऑर्गेनिक महँगा भोजन तक आसानी से उपलब्ध है! लेकिन आम मेहनतकश आबादी के पास इस तरह के न तो कोई साधन मौजूद हैं और न ही आर्थिक क्षमता है। उसे तो इसी जहरीले दमघोंटू हवा में साँस लेना है! प्रदूषित पानी पीना है! तमाम रसायन और कीटनाशकों से भरा हुआ मिलावटी भोजन लेना है! इसके अलावा ग्लोबल वार्मिंग के जो दूसरे ख़तरे प्राकृतिक आपदा के रूप में आ रहे हैं उसे भी झेलना है!

वैज्ञानिकों के अनुमान के मुताबिक अगर इस पृथ्वी पर बढ़ते तापमान को रोकना है तो कार्बन उत्सर्जन कम करने के साथ ही करीब 1.6 बिलियन हेक्टेयर में नए वनों की जरूरत होगी! यह 1.6 बिलियन हेक्टेयर भारत के आकार के पाँच गुना क्षेत्र के बराबर है! लेकिन इन वनों को लगाने की बात तो दूर यहाँ तो उल्टे उनकी अन्धाधुन्ध कटाई की जा रही है! सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में! इस मामले में भी जहाँ दक्षिणपन्थी और फ़ासीवादी ताक़तों की सरकार है वहाँ पर्यावरणीय विनाश की रफ़्तार और भी तेज़ है। चाहे अमेरिका में ट्रम्प का कार्यकाल हो, ऑस्ट्रेलिया में स्कॉट मॉरीसन, ब्राज़ील का पूर्व राष्ट्रपति बोल्सेनारो हो या यहाँ पर मोदी सरकार! डोनाल्ड ट्रम्प ने जहाँ जलवायु परिवर्तन की खिल्ली उड़ाते हुए इसे झूठा करार दिया था, वहीं बोल्सेनारो के कार्यकाल में धरती का फेफड़ा कहे जाने वाले अमेज़न वर्षा वनों की कटाई 175 गुना तक बढ़ गई थी! भारत में भी उत्तर के हिमालय से लेकर दक्षिण तक बेइन्तहा जंगलों को काटा गया है, जिसकी कीमत आम मेहनतकश आबादी चुका ही रही है!

पृथ्वी पर सबसे ज़्यादा प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों में से एक जीवाश्म ईंधन उद्योग ने पिछले 20 वर्षों में इतना अधिक मुनाफ़ा कमाया है कि उसे जलवायु के प्रति सर्वाधिक संवेदनशील 55 देशों में जलवायु के कारण होने वाले आर्थिक नुक़सान की लागत को लगभग 60 गुना से अधिक कवर किया जा सकता है! लेकिन यह मुनाफा पृथ्वी और पर्यावरण के विनाश की क्षतिपूर्ति के लिए नहीं है! क्योंकि इस विनाश से ना तो पूँजीपति वर्ग को कुछ नुकसान होने वाला है और ना ही उसके मुनाफ़े पर कुछ असर होने वाला है! यह सारा विनाश तो आम मेहनतकश अवाम को ही झेलना है। जब तक यह पूँजीवादी व्यवस्था रहेगी तब तक देश और दुनिया के मज़दूरों-मेहनतकशों को पर्यावरणीय तबाही की मार झेलनी पड़ेगी! इस तबाही से बचने का केवल और केवल एक ही विकल्प है कि इस मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था को ध्वस्त करना! इसके रहते किसी भी प्रकार की पर्यावरणीय तबाही को न ही रोका जा सकता है और न ही प्रकृति की असीम संसाधनों का समग्र मानव के हित में प्रयोग किया जा सकता है।

काँवड़ यात्रियों के बहाने दुकानों पर नाम लिखने का योगी सरकार का हिटलरी फ़रमान

● अदिति

फ़ासीवादी भाजपा देश की जनता में साम्प्रदायिक बँटवारे को तेज़ करने के लिये नये-नये हथकण्डे अपना रही है। मन्दिर-मस्जिद की राजनीति, साम्प्रदायिक भाषणों-बयानों, लव-जिहाद और जनसंख्या जिहाद जैसे नफ़रती प्रचारों के बाद उत्तर प्रदेश में भाजपा ने काँवड़ यात्रा में दुकानों पर नाम लिखने का निर्देश जारी किया था। कहने को तो देश का संविधान धर्म और जाति के नाम पर किसी भी तरह के भेदभाव पर रोक लगाता है, लेकिन विशेष तौर पर भाजपा के शासन में संविधान और सेकुलरिज़्म की बातों की असलियत यही है। काँवड़ यात्रा के दौरान शिव को जल अर्पित करने के लिये हरिद्वार से गंगा नदी से जल लाया जाता है। यह कह कर कि यात्रा के दौरान काँवड़ खण्डित ना हो और हलाल भोजन यात्रियों तक ना पहुँचे इसके लिये फ़ासीवादी योगी सरकार ने तानाशाही भरा फ़रमान जारी किया था। काँवड़ यात्रा के दौरान पूरे उत्तर प्रदेश में मार्ग पर पड़ने वाली दुकानों के मालिकों को अपने नाम और दुकान पर बिकने वाली खाद्य सामग्री की सूची लिखने का निर्देश दिया गया था। हालाँकि सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले की सुनवाई करते हुए दुकानों पर नेम प्लेट लगाने सम्बन्धी आदेश पर रोक लगा दी है और इसपर सुनवाई जारी है। लेकिन इसके बावजूद वास्तव में संघी गुण्डों ने रास्ते में पड़ने वाली दुकानों के दुकानदारों को नाम की पट्टी लगाने को बाध्य किया है।

पिछले साल भी मुज़फ़्फ़रनगर ज़िले में काँवड़ यात्रा के मार्ग पर पड़ने वाले सभी मुसलमान मालिकों के होटल बन्द करा दिये गये थे। इनमें वे शाकाहारी होटल भी शामिल थे जहाँ खाने में प्याज-लहसुन भी नहीं डाला जाता था। इस बेहूदा आदेश के पीछे मुस्लिम दुकानदारों के ख़िलाफ़ अभियान चला रहे स्वामी यशवीर नाम के एक ढोंगी बाबा का हाथ है। इस घोर साम्प्रदायिक व्यक्ति ने आरोप लगया है कि "मुसलमान लोग खाने में थूक रहे हैं और मूत्र भी कर रहे हैं।" ऐसे अपराधी की जगह सीधे जेल में होनी चाहिए थी, लेकिन फ़ासिस्ट भाजपा उसे सर-आँखों पर बैठाकर उसके वाहियात आरोपों के आधार पर लोगों का कारोबार बन्द करा रही है। इसके ज़रिये काँवड़ के नाम पर रास्ते में गुण्डागर्दी करने व साम्प्रदायिक उन्माद पैदा करने वालो के लिए राह आसान बना रही है कि वे मुस्लिम नामों की पहचान करके उन दुकानों को निशाना बनायें। संघ परिवार व उसके अनुषंगी संगठनों द्वारा वैसे भी मुस्लिम दुकानदारों से हिन्दुओं द्वारा सामान न खरीदने का अभियान लम्बे समय से चलाया जाता रहा है।

बताते चलें कि पिछले साल के मुकाबले इस साल काँवड़ यात्रियों की संख्या में 20 प्रतिशत का इज़ाफ़ा हुआ है। इस यात्रा में आम तौर पर बेरोज़गार युवा शामिल ही शामिल होते हैं और उनकी एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा लम्पटीकृत मज़दूरों और लम्पटीकृत टुटपुँजिया वर्ग से आने वाले लोगों का है। यात्रा के दौरान काँवड़ियों द्वारा हिंसा के भी तमाम मामले सामने आये, जो यह दर्शाता है कि धार्मिक यात्रा के नाम पर साम्प्रदायिक उन्माद पैदा करने की छूट योगी सरकार द्वारा दी गयी है। ज्ञात हो पिछले साल इन काँवड़ियों पर पुष्प वर्षा भी की गयी थी। इस बार काँवड़ यात्रा के दौरान कुछ हिंसा के उदाहरण पेश है :

- हरियाणा के रतिया शहर में स्कूली बस से काँवड़ छूने मात्र से काँवडियों ने बच्चों से भरी बस पर हमला कर दिया। मामला में लीपा-पोती करने के लिये पुलिस द्वारा 40 अज्ञात लोगों पर एफ़ आई आर दर्ज़ की गयी। इस घटना में संजू और विक्की जो बजरंग दल से जुड़े है उन्हें शामिल पाया गया।

- 1 अगस्त को हापुड़ के सिकन्दर गेट स्थित मदरसे पर काँवड़ियों ने धावा बोल दिया और आरोप लगाया कि मदरसे से किसी ने थूका है।

- 27 जुलाई को मुरादनगर में रावली रोड़ के पास कार चालक द्वारा काँवड़ियों को टक्कर लगने पर और एक काँवड़ खण्डित होने पर काँवड़ियों ने रोड जाम कर दिया। साथ ही कार चालक को बुरी तरह पीटा साथ ही कार में भी तोड़-फोड़ की गयी और कार पलट दी।

- 19 जुलाई को मुजफ्फरनगर में काँवड़ियों ने खाने में प्याज़ के इस्तेमाल करने पर रेहड़ी वाले को पीटा।

- 23 जुलाई को हरिद्वार में छोटी सी कहासुनी में काँवड़ियों ने ट्रक चालक पर हमला कर दिया।

- 23 जुलाई को मुजफ्फरनगर में काँवड़ियों द्वारा ई-रिक्शा चालक पर हमला किया। हमले के 5 दिन बाद चालक मोहित की मौत हो गयी, परिवार ने बताया कि मारपीट के कारण मोहित की मौत हुई।

(पेज 2 पर जारी)

दिल्ली में निजी कोचिंग संस्थानों के मुनाफ़े की हवस ने ली छात्रों की जान

बरसों से अनेक समस्याओं में जी रहे छात्र के सब्र का बाँध टूटा, सड़कों पर उमड़ा ग़ुस्सा!

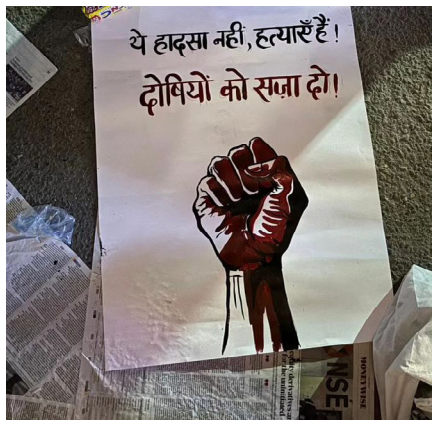

● आदित्य

बीते 27 जुलाई को देश की राजधानी में एक वीभत्स घटना घटी। दिल्ली के ओल्ड राजेन्द्र नगर के एक कोचिंग संस्थान की एक एक लाइब्रेरी में भारी बारिश के बाद पानी भरने से (बिना शहर में कोई बाढ़ आये) 3 छात्रों की डूब कर मौत हो गयी। ये तीनों छात्र यूपीएससी की तैयारी कर रहे थे। वैसे तो असल में इस घटना में कितने लोगों की मौत हुई यह अभी तक साफ़ नहीं है। घटना के वक़्त वहाँ 30-40 (यह अब तक पुष्ट तौर पर नहीं कहा जा सकता) लोग मौजूद थे, जिसमें से कुछ छात्र बाहर निकल आये। लेकिन कुल कितने छात्रों की मौत हुई यह अभी भी रहस्य है। हर बार की तरह यह पूरा तन्त्र – पुलिस-प्रशासन और सरकार, घटना और उसकी असल वज़हों पर पर्दा डालने की कोशिश में लग गये। सरकार की चाटुकार पुलिस ने कुल मौत का आँकड़ा छिपाना शुरू कर दिया और न ही घटना का सीसीटीवी फुटेज जारी किया। इतना ही नहीं, इस घटना के चार दिन पहले ही भारी बारिश के बाद एक छात्र की बिजली लगने से मौत हो गई थी। किन्तु बावजूद इसके एमसीडी (दिल्ली नगर निगम) ने कोई कार्रवाई नहीं की जिसके बाद यह दिल दहला देने वाली घटना घटी।

यह दुर्घटना नहीं हत्या है!

भले ही ये जनविरोधी सरकार (दिल्ली और देश दोनों ही) इस पूरी घटना को महज़ हादसा करार देने में लगे हों, लेकिन सच तो यह है कि यह इस व्यवस्था में चन्द लोगों के मुनाफ़े की हवस ने इनकी हत्या की है। इनके कारणों पर अगर गौर करें तो हम पायेंगे कि पुलिस, दिल्ली नगर-निगम, दिल्ली सरकार व केन्द्र सरकार – सभी इसके लिये ज़िम्मेदार हैं। यही कारण है कि ऐसी किसी घटना के होते ही ये सब मिल जाते हैं और इसे प्राकृतिक आपदा बताने लगते हैं या फ़िर किसी एक व्यक्ति को इसके लिये ज़िम्मेदार ठहराने लगते हैं। उदाहरण के लिये जैसे ही इस घटना के बाद लोगों का प्रतिरोध उमड़ पड़ा, पुलिस ने एक थार ड्राईवर को गिरफ़्तार कर लिया जो उस वक़्त वहाँ से गाड़ी लेकर गुज़र रहा था या फ़िर राओ कोचिंग संस्थान के मालिक के वकील ने इस घटना को महज़ "एक्ट ऑफ गॉड" करार दिया। लेकिन वहाँ जैसे अवैध तरीक़े से इमारतों के बेसमेण्ट में लाइब्रेरी चल रही होती है, उसपर न तो एमसीडी और न ही आप सरकार या भाजपा सरकार कोई उपयुक्त कार्रवाई करती है, उल्टा इसपर लीपापोती करने का काम करती है और एक-दूसरे पर आरोप मढने का का काम करती है। लोगों के ग़ुस्से को शान्त करने के लिये चन्द बेसमेण्ट को सील कर दिया जाता है, लेकिन यह नही बताया जाता कि एमसीडी को कई बार छात्रों ने ऐसे किसी घटना के हो जाने की चेतावनी दी थी। अर्थात छात्रों को तत्काल कुछ दिखाकर उन्हें शान्त करने की कोशिश की जाती है और यह बोला जाता है कि आप अपनी पढ़ाई पर ध्यान दो, हम असल कारणों पर पर्दा डालते रहेंगे!

अगर असल कारणों पर गौर करें तो हम पायेंगे कि इसके लिये ज़िम्मेदार मुनाफ़े की अन्धी हवस है, जिसका एक हिस्सा सरकार, नगर-निगम, पुलिस सबको जाता है। दिल्ली का ओल्ड राजेन्द्र नगर देश के कई इलाक़ों की तरह एक केन्द्र है जहाँ देश भर से छात्र आईएएस-आईपीएस बनने का सपना लेकर आते हैं। उनके इसी सपने का सौदा किया जाता है और जो इस सौदे को ख़रीदने की औकात रखता है, उसे ही इसके लिये सोचने का भी मौका दिया जाता है। यह बात दीगर है कि उसमें से एक प्रतिशत लोग भी यह सपना पूरा नहीं कर पाते हैं। आगे आँकड़ों से हम इस बात की पुष्टि भी करेंगे। यहाँ छात्रों के आते ही उन्हें लूटने की होड़ मची होती है। पहले तो यहाँ कोचिंग संस्थानों की फ़ीस लाखों में होती हैं जहाँ सैकड़ों छात्रों के कई बैच चलाये जाते हैं। इसमें भी छात्रों को भ्रमित करने और पैसे ऐंठने के लिये अलग-अलग कई किस्म के कोर्स रखे जाते हैं। इतना ही नही, इनसे वहाँ रहने पर भी इन्हें लूटा जाता है। रहने के लिये छात्रों से सोने-चाँदी के जैसे पैसे लिये जाते हैं, रहने को माचिस की डिब्बी जैसे कमरे दिये जाते हैं। उसमें भी यहाँ एक दलालों का नेटवर्क चलता है जिसके बिना कमरे नही मिल सकते। इस तरह यह पूरा कारोबार अरबों का है। अब आप सोच सकते हैं कि क्यों पुलिस, नगर-निगम, सरकार और मीडिया इस घटना को "दुर्घटना" करार देने को अमादा है!

आज शिक्षा की हालत और इसका बाजारीकरण

पहले हम यूपीएससी के छात्रों की बात करें तो आज भले ही लाखों बच्चे देशभर में इसकी तैयारी करते हैं, लेकिन सच्चाई यह है कि इनमें से बमुश्किल ही कुछ छात्रों को नौकरियाँ मिल पाती हैं। अगर आँकड़ों पर नज़र दौड़ाएँ तो 2023 में 13 लाख से भी ज़्यादा छात्र इस परीक्षा में शामिल हुए थे, लेकिन इसमें से महज़ 1016 छात्र ही इसमें उत्तीर्ण हो पाये। मतलब सिर्फ़ 0.07 प्रतिशत छात्र ही इस परीक्षा में पास हो पाये। वहीँ 2021 में 5,08,619 छात्रों ने इस परीक्षा में भागीदारी की थी जिसमें से सिर्फ़ 685 छात्रों को, मतलब 0.13 प्रतिशत छात्रों को ही नौकरी मिल पायी। इसमें भी यह तो आज साफ़ है कि जिस तरह से भाजपा और आरएसएस के लोगों ने हर संस्थानों में अपने लोगों को घुसाने का काम किया है, तो इसमें शक नहीं होना चाहिए कि इन "उत्तीर्ण" छात्रों में बहुमत में वैसे ही लोगों को चुना जाता हो जिनका सम्बन्ध उनके ही ज़हरीले विचारधारा से हो। साथ में 2021 की तुलना में दोगुने से भी अधिक छात्रों का परीक्षा के लिये फॉर्म भरना बाकि जगहों पर नौकरी न होने की बात भी साबित करता है। और आज यह हक़ीक़त है कि रोज़गार की भयंकर कमी के कारण सालों तैयारी करने के बाद बाकि के लाखों छात्र या तो वापस घर बेरोज़गार लौट जाते हैं, छोटा-मोटा धन्धा शुरू कर देते हैं, छोटी-मोटी नौकरियाँ करने को मजबूर हो जाते हैं या फ़िर इन सब से हारकर आत्महत्या करने को मजबूर हो जाते हैं।

आज देश के हर शिक्षण संस्थानों की हालत कमोबेश यही है। सरकारी स्कूलों की हालत कैसी है यह हमें पहले ही पता है, अब सरकारी कॉलेजों को भी सोचे-समझे तरीक़े से बर्बाद किया जा रहा है ताकि निजी स्कूलों-कॉलेजों-कोचिंगों का धन्धा चल सके। शिक्षा को बाज़ारू माल बना दिया गया है। इसमें कई कोचिंग माफ़िया का जन्म हुआ है जो अपने तरीक़ों से मनमाना तौर पर छात्रों को लूटने का काम करते हैं। इनका अरबों का कारोबार होता है और अपने पैसों के दम पर प्रचारों के ज़रिये यूपीएससी जैसी प्रतियोगी प्रतियोगिताओं को पा लेने की ख़ुमारी लोगों में नशे की तरह चढ़ायी जाती है। उन्हें किताबों की दुनिया में क़ैद रहने कहा जाता है और बताया जाता है कि सवाल मत करो!

आज नौकरियाँ पहले ही नहीं हैं और नाममात्र की वैकेंसियाँ निकल रहीं हैं, लेकिन आलम यह है कि उसमें भी एनटीए जैसे संस्थान के ज़रिये पेपर लीक करा दिया जाता है। और यह यहीं तक सीमित नही रहता, नीट-जेईई, जेआरई जैसे प्रतियोगी परीक्षाओं में भी धाँधली हो जाती है। इन घटनाओं का ही प्रभाव है कि आज लगातार छात्रों के आत्महत्याओं में इज़ाफ़ा हो रहा है। 2018 से 2022 के बीच कुल 59,239 ने आत्महत्याएँ की। इसमें सिर्फ़ 2022 में लगभग 13 हज़ार छात्रों ने आत्महत्या की जबकि 2017 में यह संख्या 9,905 थी। इस संख्या का बढ़ना अपने आप में देश की शिक्षा व्यवस्था की ख़स्ता हालत को बयाँ करने के लिये काफ़ी है जो दिन-ब-दिन बदतर ही होती जा रही है।

लोगों का उभरता प्रतिरोध

ऊपर लिखित बातों से यह स्पष्ट है कि कैसे आज शिक्षा का बाज़ारीकरण कर दिया गया है, और इसे चन्द लोगों की बपौती बना दी गयी है। लेकिन आज साथ ही देश भर में इन घटनाओं के ख़िलाफ़ प्रतिरोध भी उमड़ रहा है। यह कोई अनायास नही है कि नीट और जेआरई के पेपर लीक होने के बाद देश भर के छात्र सड़कों पर उतर आते हैं। या फ़िर ओल्ड राजेन्द्र नगर की घटना होने पर अपने कमरों और लाइब्रेरियों में क़ैद रहने वाले छात्र सड़कों पर उतर जाते हैं। यह वास्तव में तमाम समस्याओं का एक चरम बिन्दु है जिसके बाद आम छात्रों और लोगों का ग़ुस्सा इसपर फूट रहा है। यह तो असल में महँगी होती शिक्षा, भयंकर बेरोज़गारी और तमाम विषम परिस्थितियों जैसे महँगाई, साम्प्रदायिकता आदि का नतीज़ा है जो किन्हीं घटनाओं के घटित होने पर सामने आ रहा है। हाल ही में बंगलादेश के छात्रों का देशव्यापी आन्दोलन इसी का उदाहरण है, जिसमें छात्रों का ग़ुस्सा वहाँ लम्बे समय से चले आ रही महँगाई, बेरोज़गारी आदि जैसी समस्याओं पर फूट पड़ता है और वहाँ की प्रधानमन्त्री तक को देश छोड़ का भागना पड़ता है।

आज छात्रों के सामने विकल्प क्या है?

देश की सरकार कितना भी दावा कर ले कि हमारा देश तरक्की कर रहा है, विश्वगुरु बन रहा है, लेकिन देश के हालात लोगों को इसे सच मानने से रोक रहे हैं। देश में मौजूद फ़ासीवादी सरकार द्वारा लगातार एक नकली दुश्मन खड़ा करने की कोशिश की जा रही है, लेकिन एक बड़ी आबादी यह समझने लगी है कि देश में आज उनकी असल समस्या महँगी शिक्षा, महँगा स्वास्थ्य, बेरोज़गारी, महँगाई, भुखमरी आदि है। ऐसे में आज छात्रों को सिर्फ़ घटना विशेष पर प्रदर्शनों तक सीमित नहीं रहना होगा। इन तमाम विरोध प्रदर्शनों को एक व्यापक राजनीतिक विरोध प्रदर्शन बनाने का काम करना होगा। ऐसे छात्रों के स्वतन्त्र संगठन बनाने होंगे जो छात्रों के जनआन्दोलनों को सही दिशा दे सकें। कोई भी प्रदर्शन सिर्फ़ एक घटना तक ही सीमित न रहे बल्कि इसके ज़रिये सबके लिये समान व निःशुल्क शिक्षा-स्वास्थ्य, पब्लिक लाइब्रेरी जैसी माँगों को भी उठाया जाये। हर जगह छात्रों के रहने के लिये सरकारी होस्टलों की व्यवस्था की जाये। जहाँ सरकार यह नहीं कर पाती वहाँ रेण्ट कण्ट्रोल एक्ट लागू किये जायें जिसके ज़रिये दलालों और मकानमालिकों जैसे परजीवियों पर काबू किया जा सके। यही नहीं, हमें उन तमाम प्रदर्शनों का समर्थन करना होगा जो आज ग़लत के ख़िलाफ़ उठ रहे हैं। चाहे बंगाल में हुई अमानवीय घटना के ख़िलाफ़ हो या बंगलादेश में छात्रों का समर्थन हो, हमें हर तरह के समर्थन जुटाने व करने होंगे। हमें भगत सिंह, सुखदेव चन्द्रशेखर आज़ाद जैसे युवा क्रान्तिकारियों की विरासत को आगे बढ़ाना होगा और देश के तमाम छात्रों का एक देशव्यापी आन्दोलन खड़ा करना होगा, तभी जाकर देश के तमाम छात्रों के लिये एक बेहतर भविष्य की बात की जा सकती है!

दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा के नेतृत्व में दिल्ली के जन्तर-मन्तर पर

पेपर लीक और भर्तियों में धाँधली के खिलाफ़ छात्रों-युवाओं का जुझारू प्रदर्शन!

पुलिस ने आन्दोलन का बर्बरतापूर्वक दमन किया और सैकड़ों छात्रों को हिरासत में लेकर कापसहेड़ा बॉर्डर थाने में रखा!

मोदी सरकार और दिल्ली पुलिस का छात्र-युवा विरोधी चेहरा एक बार फिर से बेनकाब!

पारदर्शी परीक्षा प्रणाली और भ्रष्टाचार मुक्त भर्ती व्यवस्था हमारा हक़ है, पुलिसिया दमन से हमारा संघर्ष थमेगा नहीं!

पेपर लीक और भर्तियों में धाँधली के खिलाफ़ भगतसिंह जनअधिकार यात्रा के तहत दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा का आन्दोलन जारी रहेगा!

'भारत छोड़ो आन्दोलन' की ऐतिहासिक तारीख़ 9 अगस्त के दिन परीक्षाओं में पेपर लीक और भर्तियों में व्याप्त भ्रष्टाचार के खिलाफ़ राजधानी दिल्ली में जन्तर-मन्तर पर छात्रों ने विरोध प्रदर्शन किया। इसमें देश के 12 राज्यों से सैकड़ों की संख्या में छात्र-युवा प्रतिनिधि शामिल हुए। दिल्ली पुलिस ने जुटान से पहले ही "अनुमति" न होने का हवाला दे दिया था। यही इस देश में विरोध करने के जनवादी अधिकार की असल हक़ीक़त बन चुकी है। इसके बावजूद जब छात्र-युवा संसद मार्ग थाने तक एक रैली की शक्ल में पहुँच गये तब दिल्ली पुलिस के अफ़सरों को मजबूरन जन्तर-मन्तर पर सभा के लिए जगह देनी पड़ी। जन्तर-मन्तर पर चली सभा को अलग-अलग राज्यों से आये छात्र-युवा प्रतिनिधियों ने सम्बोधित किया। अन्धी-बहरी फ़ासीवादी मोदी सरकार का कोई भी प्रतिनिधि छात्र-युवाओं का ज्ञापन लेने तक नहीं आया। प्रदर्शनकारी जब ज्ञापन सौंपने के मक़सद से संसद मार्ग की ओर बढ़े तो मोदी सरकार की दिल्ली पुलिस ने दमन का पाटा चला दिया। छात्राओं तक को बुरे तरीक़े से घसीटा गया। कइयों के कपड़े तक फट गये। लातों-घूँसों से छात्र-छात्राओं को पीटा गया। केशव, अंजलि, नीशू, विशाल आदि कई साथियों को अलग से निशाना बनाया गया। घण्टाभर चली जद्दोजहद के बाद पुलिस द्वारा सैकड़ों प्रदर्शनकारियों को बसों में ठूँस दिया गया। दिल्ली की सड़कों पर उन्हें घण्टों घुमाया गया। इस दौरान पानी ही नहीं बल्कि घायल और बेहोश साथियों को प्राथमिक चिकित्सा की सुविधा तक नहीं दी गयी। प्रदर्शनकारियों को हिरासत में लेकर कापसहेड़ा थाने में रखा गया। हिरासत के दौरान भी छात्रों-युवाओं का धरना लगातार जारी रहा। ख़बर फ़ैलने के बाद देशभर से नागरिकों, बुद्धिजीवियों ने दिल्ली पुलिस-प्रशासन पर दबाव बनाया। अपनी फ़जीहत होती देख और आन्दोलन के तीखे तेवर के सामने पुलिस को अन्त में हार माननी पड़ी और प्रदर्शनकारी छात्रों-युवाओं को बिना किसी कार्रवाई के देर शाम रिहा करना पड़ा। आन्दोलन को आगे बढ़ाने के नये संकल्प के साथ प्रदर्शन का समापन हुआ।

इस देश के हुक्मरानों का अपनी न्यायपूर्ण माँगों के लिए शान्तिपूर्ण विरोध कर रहे आम छात्रों-युवाओं के प्रति रवैया फिर से साफ़ हो गया। ख़ासतौर पर भाजपा सरकार के कार्यकाल के दौरान देश में बेरोज़गारी, परीक्षाओं में पेपर लीक और भर्तियों में भ्रष्टाचार पिछले सारे रिकॉर्ड तोड़ चुका है। प्रधानमन्त्री मोदी जी ने कभी इस बात पर गर्व किया था कि हमारा देश युवा आबादी का सबसे बड़ा देश है। लेकिन युवा आबादी के इस सबसे बड़े देश के युवाओं का भविष्य अँधेरे की गर्त में है। पिछले सात सालों के दौरान 80 से ज़्यादा परीक्षाओं के पेपर लीक हो चुके हैं। भर्तियों में होने वाला भ्रष्टाचार हम सबके सामने है। आरओ-एआरओ, यूपी पुलिस भर्ती परीक्षा, बीपीएससी से लेकर हाल में नीट और यूजीसी नेट जैसी परीक्षाओं की एक लम्बी फ़ेहरिस्त है। इस पर भी मौजूदा शिक्षा मन्त्री धर्मेन्द्र प्रधान संसद में यह बयान देने की बेशर्मी कर रहे हैं कि भाजपा के कार्यकाल में एक भी पर्चा लीक नहीं हुआ है। केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की प्रवेश परीक्षाएँ भी आयोजित करने वाली एनटीए जैसी संस्था को बिना किसी सुव्यवस्थित ढाँचे के चलाया जा रहा है जिसका नतीजा यह है कि एनटीए द्वारा आयोजित की जाने वाली परीक्षाओं में बड़े पैमाने पर अनियमितताएँ सामने आ रही हैं। एनटीए द्वारा आयोजित की जाने वाली सभी परीक्षाएँ प्राइवेट एजेंसियों के माध्यम से करायी जा रही हैं। विभिन्न परीक्षाओं के पेपर सरकारी प्रेसों की जगह प्राइवेट प्रेसों से छपवाये जा रहे हैं। हाल ही में उत्तर प्रदेश में आरओ-एआरओ परीक्षा में पेपर लीक में प्राइवेट प्रेस से ही पेपर लीक हुआ था। कहना नहीं होगा छात्रों-युवाओं के भविष्य के साथ खिलवाड़ लगातार जारी है। हमारे सपनों को मोदी सरकार के राज के दौरान बुरी तरह से कुचला गया है।

वास्तव में परचा लीक और धाँधली की इन बढ़ती घटनाओं को देश में परीक्षा और शिक्षा के सरकारी तन्त्र की विश्वसनीयता को समाप्त करके निजी तन्त्र को बढ़ावा देने की सरकार की कवायद से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। इस वर्ष ही एनटीए द्वारा सीयूईटी (यूजी) प्रवेश परीक्षा के परिणाम बहुत देर से जारी किये गये और तब तक बड़े पैमाने पर छात्र विभिन्न प्राइवेट विश्वविद्यालयों में दाखिला ले चुके थे। ऑल इण्डिया सर्वे ऑफ़ हायर एजुकेशन की एक रिपोर्ट के मुताबिक भारत के विश्वविद्यालयों में 2014 से 2021 के दौरान 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई लेकिन इस वृद्धि का 84 प्रतिशत निजी विश्वविद्यालयों में चला गया। मोदी सरकार नीत नयी शिक्षा नीति के लागू होने के साथ ही यह प्रक्रिया और तेज़ हुई है। यानी एक तरफ़ सरकारी विश्वविद्यालयों के पूरे ढाँचे को ही तहस-नहस किया जा रहा है, और दूसरी तरफ़ परीक्षाओं में धाँधली और भ्रष्टाचार के माध्यम से उनकी विश्वसनीयता को समाप्त करके उनपर दोहरा हमला किया जा रहा है।

मौजूदा भाजपा सरकार का छात्रों के प्रति सरोकार साफ़ है। इसी भाजपा ने 2014 में हर साल 2 करोड़ रोज़गार देने का वायदा किया था। केन्द्र सरकार के तहत आने वाली भर्तियों के लिए आठ सालों में 22.5 करोड़ से ज़्यादा नौजवानों ने आवेदन भरे, लेकिन नौकरी महज़ 7 लाख 22 हज़ार नौजवानों को मिली। प्रधानमन्त्री "परीक्षा पर चर्चा" के लिए जितने उत्सुक रहते हैं, परीक्षाओं में धाँधली के बारे में बात करने में इस सरकार को उतना ही काठ मार जाता है। भाजपा सरकार के शीर्ष नेतृत्व के हिसाब से तो पकौड़े तलना और भीख माँगना भी रोज़गार की श्रेणी में आता है! सरकारी रिपोर्ट के ही अनुसार 2022 में हर 2 घण्टे में 3 छात्रों ने आत्महत्या की है। निजीकरण-उदारीकरण को बढ़ावा देने वाली भाजपा सरकार देश के नौजवानों को भविष्य की अनिश्चितता और अवसाद ही दे सकती है। भाजपा ने छात्रों-युवाओं को रोज़गार के नाम पर केवल छलाभर है। आठ करोड़ रोज़गार देने का मोदी सरकार का दावा एक सफ़ेद झूठ के अलावा और कुछ नहीं है। सच्चाई यह है कि मोदी सरकार के पिछले एक दशक के कार्यकाल में बेरोज़गारों की संख्या बढ़ी है। आईएलओ की एक रिपोर्ट के अनुसार देश में बेरोज़गारों में 84 प्रतिशत युवा हैं। एनसीआरबी के आँकड़ों के अनुसार देश में आत्महत्या करने वालों में दो-तिहाई संख्या युवाओं की है। पेपर लीक और धाँधली के पीछे भी वास्तव में रोज़गार का बढ़ता हुआ संकट ही ज़िम्मेदार है। देश में नियमित रोज़गार के अवसर लगातार घटते जा रहे हैं। ऐसे में जो थोड़ी-बहुत भर्तियाँ निकल रही हैं, उनको पैसे और पहुँच रखने वाले लोग किसी भी क़ीमत पर अपने लिए सुरक्षित करा लेना चाहते हैं। यही वजह है कि देश में जैसे-जैसे स्थायी नौकरियाँ घट रही हैं, परीक्षाओं में धाँधली और पेपर लीक की घटनाएँ उसी अनुपात में बढ़ती जा रही हैं।

पुलिसिया दमन से इस संघर्ष को रोका नहीं जा सकता है। मोदी सरकार को बंगलादेश के पूरे घटनाक्रम को देखकर चेत जाना चाहिए। छात्रों-युवाओं पर किया जाने वाला कोई भी दमन मोदी सरकार पर भारी पड़ेगा। दिशा और नौभास का मानना है कि पेपर लीक और भर्तियों में धाँधली के ख़िलाफ़ इस संघर्ष को इस पूरी व्यवस्था से, रोज़गार के हक़ की लड़ाई से जोड़ना होगा। पारदर्शी परीक्षा प्रणाली और भ्रष्टाचार मुक्त भर्ती व्यवस्था युवाओं का हक़ है और वे इसे लेकर रहेंगे। परीक्षाओं में पेपर लीक और भर्तियों में धाँधली के खिलाफ़ भगतसिंह जनअधिकार यात्रा के तहत दिशा-नौभास का आन्दोलन जारी रहेगा!

– बिगुल संवाददाता

केन्द्रीय बजट : जनता की जेब काटकर पूँजीपतियों की तिजोरी भरने का काम बदस्तूर जारी

● आनन्द

गत लोकसभा चुनावों में पटखनी खाने के बाद कमज़ोर हुई मोदी सरकार ने अपने इस तीसरे कार्यकाल का पहला बजट पेश करते हुए आने वाले समय में अपनी नीतियों की एक झलक दे दी है। जैसाकि उम्मीद थी, गठबन्धन सरकार को बचाने के लिए चन्द्रबाबू नायडू की टीडीपी और नीतीश कुमार की जदयू को ख़ुश रखने के लिए आन्ध्र प्रदेश और बिहार को विशेष पैकेज देने की घोषणा की गयी। लेकिन देशी-विदेशी पूँजीपतियों और धनी किसानों व कुलकों के हितों की हिफ़ाजत करने और मज़दूरों व मेहनतकशों की लूट-खसोट बरकरार रखने में सरकार ने इस बार भी कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है। प्रत्यक्ष करों के मुक़ाबले अप्रत्यक्ष करों पर ज़ोर बढ़ाने और प्रत्यक्ष करों में भी कॉरपोरेट कर का हिस्सा लगातार कम करते जाने की अपनी पुरानी नीति को कायम रखते हुए मोदी सरकार ने इस गठबन्धन के कार्यकाल में भी पूँजी और श्रम के बीच के बुनियादी अन्तरविरोध में पूँजी के प्रति अपनी स्पष्ट प्रतिबद्धता को एक बार फिर से ज़ाहिर किया है। राजकोषीय घाटे को काबू करने के नाम पर ग़रीब व मेहनतकश जनता को दी जाने वाली सब्सिडी व बजट आबण्टन में कटौती करने की प्रक्रिया भी बदस्तूर जारी रखी गयी है। रोज़गार के नाम पर कुछ दिखावटी स्कीमों के नाम गिनाकर महज़ जुबानी ज़मा ख़र्च से आगे कुछ भी नहीं किया गया है। जो लोग उम्मीद कर रहे थे कि कमज़ोर होने के बाद मोदी सरकार ग़रीबों व मेहनतकशों के प्रति थोड़ा नरमी दिखाएगी उनकी उम्मीदों पर इस नये कार्यकाल के पहले बजट में ही पानी फिर गया है।

वित्तमन्त्री निर्मला सीतारमण ने सरकार की मंशा तभी जाहिर कर दी जब उन्होंने बजट भाषण के दौरान घोषणा की कि सरकार राजकोषीय घाटे के लक्ष्य को घटाकर जीडीपी का 4.9 प्रतिशत करेगी। ग़ौरतलब है कि चुनावों से पहले प्रस्तुत अन्तरिम बजट में यह लक्ष्य 5.1 प्रतिशत का रखा गया था। नवउदारवादी नीतियों का एक महत्वपूर्ण तत्व राजकोषीय घाटे को कम से कम रखना है जिसका सीधा मतलब होता है कि जनता के कल्याण पर होने वाले सरकारी ख़र्चों में कटौती की जाए ताकि पूँजीपतियों के ऊपर से करों को बोझ लगातार कम से कम किया जा सके और जनता पर अप्रत्यक्ष करों का बोझ बढ़ाया जा सके। इस प्रकार मोदी सरकार ने इस कार्यकाल में भी नवउदारवादी नीतियों को धड़ल्ले जारी रखने के स्पष्ट संकेत दे दिये हैं। विदेशी पूँजी को भारत में निवेश करके भारत के मज़दूर वर्ग को शोषण करके अकूत मुनाफ़ा कूटने के लिए आमन्त्रित करते हुए इस बजट में विदेशी कम्पनियों के लिए कॉरपोरेट करों की दर 40 प्रतिशत से घटाकर 35 प्रतिशत कर दिया गया है। इससे देशी पूँजीपतियों को भी फ़ायदा होगा क्योंकि उत्पादन के साधनों व मध्यवर्ती उत्पादों का आयात करने वाले पूँजीपतियों के लिए लागत कम हो जायेगी। ग़ौरतलब है कि मोदी सरकार ने अपने 10 साल के कार्यकाल में पहले ही भारतीय कम्पनियों के लिए कॉरपोरेट कर की दर को 35 प्रतिशत से घटाकर 22 प्रतिशत कर दिया है। अब विदेशी कम्पनियों के लिए कॉरपोरेट करों में कटौती करके पूँजी के प्रति अपनी पक्षधरता का एक बार फिर से ऐलान किया है।

2014 में कुल कर राजस्व में कॉरपोरेट करों का हिस्सा 34.5 प्रतिशत था जो 2024 में घटकर 26.6 प्रतिशत रह गया है। अब विदेशी कम्पनियों को दी गयी राहत के बाद कॉरपोरेट करों का हिस्सा और भी कम होगा। कम्पनियों पर लगने वाले करों में कटौती का तर्क यह दिया जाता है कि इससे निवेश बढ़ेगा और रोज़गार के नये अवसर पैदा होंगे। परन्तु पिछले 10 सालों के मोदी सरकार के कार्यकाल में कई लाख करोड़ रुपयों की राहत देने के बाद भी रोज़गार की स्थिति बद से बदतर ही हुई है। कम्पनियों को करों में छूट देने का साफ़ मतलब है कि सरकार अपनी आमदनी के लिए जनता पर करों का बोझ बढ़ाती जाएगी। वैसे भी सरकार के कुल राजस्व में जीएसटी जैसे अप्रत्यक्ष करों का हिस्सा बढ़ता जा रहा है जो आम जनता पर भारी पड़ता है क्योंकि वह सभी पर एकसमान दर से लगता है और लोगों की आय से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता है। प्रत्यक्ष करों में भी मोदी सरकार कॉरपोरेट करों में कटौती करके आयकर का हिस्सा लगातार बढ़ाती गयी है जिसका सीधा असर वेतनभोगी मध्यवर्ग पर करों का बोझ बढ़ने के रूप में सामने आता है। पिछले 10 सालों में कुल कर राजस्व में आयकर का हिस्सा 20.8 प्रतिशत से बढ़कर 30.9 प्रतिशत हो गया है।

राजस्व के मामले में जनता पर करों का बोझ बढ़ाने और बड़ी पूँजी को करों में दी जाने वाले छूट के अलावा सरकार द्वारा राजकोषीय घाटे को कम करने की दूसरी रणनीति सरकारी व्यय में कटौती करने की रही है और इस बजट में भी यह रणनीति जारी रही। ख़ास तौर से जनता के कल्याण की स्कीमों यानी सामाजिक क्षेत्र में सरकार द्वारा किये जाने वाले ख़र्च में कटौती का सिलसिला इस बजट में भी जारी रहा। एक ऐसे समय में जब देश की ग़रीब व मेहनतकश जनता भयंकर तंगी और बदहाली से जूझ रही है और बेहिसाब महँगाई का सामना कर रही है, सामाजिक क्षेत्र में सरकारी ख़र्च में कटौती करना किसी आपराधिक कृत्य से कम नहीं है। लेकिन मोदी सरकार शुरू से ही निहायत ही बेशर्मी से यह आपराधिक कृत्य अंजाम देती आयी है। इसका सीधा नतीजा बढ़ती भुखमरी, कुपोषण और बीमारियों के रूप में सामने आ रहा है। आम लोगों के जीवन की बदहाली कुछ प्रातिनिधिक आँकड़ों से समझी जा सकती है। वर्ष 2024 में घरेलू व्यय की दर में 20 वर्षों में सबसे कम पायी गयी तथा घरेलू बचत की दर 47 वर्षों में सबसे कम पायी गयी। खाद्य पदार्थों में महँगाई की दर जून के महीने में 9.5 प्रतिशत तक पहुँच गयी। ऐसे में जनता को राहत देने की बजाय बजट ने उसकी मुश्किलें और बढ़ाने का काम किया है। *सेण्टर फ़ॉर चाइल्ड राइट्स* द्वारा किये गये एक विश्लेषण में दिखाया गया है कि पिछले 10 सालों में बच्चों पर सरकार द्वारा किये जाने वाले ख़र्च 4.5 प्रतिशत से घटकर 2.3 प्रतिशत रहा गया है। इस बजट में भी सामाजिक क्षेत्र से सम्बन्धित मन्त्रालयों को आवंटित बजट को जीडीपी के 15.6 प्रतिशत से और कम करके 14.8 प्रतिशत कर दिया है। आँगनवाड़ी स्कीम और मिड-डे मील स्कीम में सरकार द्वारा किये जाने वाले ख़र्च में वास्तविक मूल्य में कटौती का रुझान इस बार भी जारी रखा गया है। इसी प्रकार सार्वजनिक वितरण प्रणाली और महात्मा गाँधी ग्रामीण रोज़गार गारण्टी एक्ट (मनरेगा) में भी कटौती का सिलसिला जारी रखा गया है। इस वित्तीय वर्ष 2024-25 में मनरेगा में आवंटित अनुमानित बजट 86 हज़ार करोड़ रुपये है जो पिछले वित्तीय वर्ष में हुए वास्तविक ख़र्च यानी 98 हज़ार करोड़ रुपये से काफ़ी कम है। एक अनुमान के मुताबिक़ अगर मनरेगा के तहत वाक़ई 100 दिन का रोज़गार प्रदान करना है तो सरकार को हर वर्ष डेढ़ लाख करोड़ रुपए से ज़्यादा का आबण्टन करना चाहिए। लेकिन मोदी सरकार उसका आधा आबण्टन करती आयी है और उसे भी साल-दर-साल कम करती आयी है। प्रधानमन्त्री ग़रीब कल्याण अन्न योजना में भी पिछले वित्तीय वर्ष के संशोधित अनुमान के मुक़ाबले 5000 करोड़ रुपये की कटौती की गयी है। प्रधान मन्त्री आवास योजना व जल जीवन मिशन के बजट में भी मामूली बढ़ोतरी ही की गयी है जोकि अपर्याप्त है। इसी प्रकार भोजन और खाद में सरकार द्वारा दी जाने वाली सब्सिडी में भी कटौती का सिलसिला बरकरार रखा गया है। साथ ही गाँवों में छोटे व मझौले किसानों के हितों में बजट आबण्टन करने की बजाय सरकार ने लगभग सभी प्रमुख फसलों में न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) में बढ़ोतरी को बरकरार रखा है जिसका लाभ सिर्फ़ धनी किसानों व कुलकों को ही होगा। शिक्षा के बजट में भी मामूली बढ़ोतरी की गयी है जिसे वास्तविक मूल्य के मद्देनज़र देखने पर साफ़ होता है कि शिक्षा के बजट में वास्तव में कटौती की गयी है। शिक्षा में कम बजट आवंटित करके सरकार स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों को इशारा कर रही है कि वे अपना ख़र्च छात्रों की फ़ीस बढ़ाकर और सेल्फ़-फ़ाइनेंसिंग स्कीमों के ज़रिये निकाले। इस प्रकार सरकार नागरिकों के शिक्षा के मूलभूत हक़ पर डाका डाल रही है। यही हालत स्वास्थ्य के क्षेत्र की है जिसके बजट में भी बेहद मामूल बढ़ोतरी की गयी है।

वित्तमन्त्री ने अपने बजट भाषण में नये रोज़गार पैदा करने के नाम पर लम्बे-चौड़े वायदे किये। लेकिन ग़ौर से देखने पर हम पाते हैं कि ये वायदे हवाई किले ही साबित होने वाले हैं। रोज़गार के नाम पर अगले 5 सालों में 1 करोड़ युवाओं को अप्रेण्टिसशिप देने की बात की गयी है। देश की शीर्ष की 500 कम्पनियों से कहा गया है कि वे अगले 5 सालों तक हर साल 4 हज़ार अप्रेण्टिस की भर्ती करें जिन्हें सरकार अपनी ओर से हर महीने महज़ 5000 रुपये का स्टाइपेंड देगी। यानी कम्पनियाँ अपने काम इन अप्रेण्टिस से करवाएँगी और बदले में जनता से वसूले गये करों से अप्रेण्टिस को स्टाइपेंड दिया जाएगा। इस अप्रेण्टिसशिप योजना को रोज़गार का नाम देना वास्तव में इस देश के युवाओं के साथ एक भद्दा मज़ाक़ है। सरकार इन कम्पनियों से यह काम कैसे करवायेगी, इसकी भी कोई चर्चा नहीं की गयी है। यह भी श्रम के अनौपचारिकीकरण की नवउदारवादी योजना के तहत उठाया गया एक हथकण्डा है जिसमें पक्के रोज़गार की गारण्टी देने की बजाय महज़ अप्रेण्टिसशिप का झुनझुना थमाया गया है। अव्वलन तो निजी कम्पनियाँ सरकार की मर्जी के मुताबिक़ अप्रेण्टिस लेने की बजाय अपनी ज़रूरत के हिसाब से ही अप्रेण्टिस या इन्टर्न को लेंगी। लेकिन जिस भी हद तक यह योजना कारगर रहती है, इससे रोज़गार की समस्या हल करने की दिशा में एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ने वाला है क्योंकि अप्रेण्टिसशिप पूरी करने वाले युवाओं के सामने नौकरी खोजने की जद्दोजहद फिर भी करनी होगी और जिस अर्थव्यवस्था में नये रोज़गार का सृजन ही नहीं हो रहा है उसमें एक साल की अप्रेण्टिस करने के बाद बस यह फ़र्क़ होगा कि बेरोज़गारों की लगातार बढ़ती फ़ौज में कुछ बेरोज़गार ऐसे भी होंगे जिनके पास डिग्री के अलावा अप्रेण्टिस का प्रमाणपत्र भी होगा।

रोज़गार के सृजन के नाम पर सरकार ने छोटे व मँझोले उद्योगों को क़र्ज़ लेने में सहूलियतें देने की घोषणा की है। परन्तु अतीत का अनुभव हमें बताता है कि जब अर्थव्यवस्था की हालत डाँवाडोल हो तो ये क़र्ज़ लोगों के गले की फ़ाँस ही बनते हैं। यही बात छात्रों और किसानों के लिए प्रोत्साहित किये जा रहे क़र्ज़ों के मामले में भी लागू होती है। ये क़र्ज़ छोटे कारीगरों, छात्रों तथा किसानों के हित में नहीं बल्कि वित्तीय पूँजी के हित में दिये जाते हैं जिसका फ़ायदा बैंकों व वित्तीय संस्थानों को ही होता है। इसके अनगिनत उदाहरण दिये जा सकते हैं कि कारीगरों, छात्रों व किसानों द्वारा की गयी आत्महत्याएँ में एक प्रमुख कारण उनपर क़र्ज़ों का बढ़ता बोझ होता है।

सामाजिक क्षेत्र में तमाम कटौतियाँ घोषित करने के बाद वित्तमन्त्री निर्मला सीतारमण ने बिहार व आन्ध्र प्रदेश के लिए क्रमश: 56 हज़ार करोड़ रुपये तथा 25 हज़ार करोड़ रुपये का स्पेशल पैकेज देने की घोषणा की। इसके अलावा आन्ध्र प्रदेश की नयी राजधानी अमरावती के निर्माण के लिए 15 हज़ार करोड़ रुपये विश्व बैंक जैसी अन्तरराष्ट्रीय एजेन्सियों से क़र्ज़ उपलब्ध कराने की बात कही गयी। कहने की ज़रूरत नहीं कि यह पैकेज बिहार और आन्ध्र प्रदेश की जनता के कल्याण को मद्देनज़र रखते हुए नहीं बल्कि गठबन्धन सरकार को स्थिर बनाए रखने के लिए दिया गया है। नीतीश कुमार और चन्द्रबाबू नायडू क्रमश: बिहार व आन्ध्र प्रदेश को विशेष राज्य का दर्जा देने की माँग कर रहे थे, लेकिन मोलभाव करने के बाद दोनो विशेष पैकेज पर रज़ामन्द हो गये हैं। ग़ौरतलब है कि इस विशेष पैकेज से बिहार व आन्ध्र के पूँजीपतियों, नेताओं, नौकरशाहों, भू-माफ़ियाओं, बिल्डरों और ठेकेदारों के ही वारे न्यारे होने वाले हैं, इन राज्यों की आम मेहनतकश जनता की ज़िन्दगी में इससे कोई बेहतरी नहीं होने वाली है।

पेरिस की वर्ल्ड इनइक्वालिटी लैब ने 1923 और 2023 के बीच के सौ सालों के दौरान भारत में असमानता का अध्ययन करते हुए अपनी हालिया रिपोर्ट में दिखाया है कि 2024 में भारत में आय असमानता ब्रिटिश राज के मुक़ाबले भी ज़्यादा है और आज भारत दुनिया के सबसे ज़्यादा असमान देशों में शामिल है। ये हालात आज़ादी के बाद हुए पूँजीवादी विकास और ख़ासतौर पर नवउदारवादी नीतियों के तीन दशकों के दौरान विभिन्न सरकारों द्वारा अपनायी गयी नीतियों का ही नतीजा हैं। पिछले 10 सालों के दौराना मोदी सरकार ने इन नीतियों को अभूतपूर्व रफ़्तार दी है। वर्ष 2024-25 का यूनियन बजट भी उसी दिशा में आगे बढ़ा हुआ क़दम है।

मेहनतकश-मज़दूरों के हितों पर हमले और पूँजीपतियों के हितों की हिमायत का दस्तावेज़

(पेज 1 से आगे)

बिल का बोझ इन पूँजीपतियों पर उसी अनुपात में नहीं बढ़ेगा जिस अनुपात में मज़दूरों की संख्या बढ़ेगी। यानी, मज़दूरी देने के बोझ से उन पूँजीपतियों को कुछ राहत देगी, जो नया रोज़गार नये मज़दूरों को देंगे! पहली बात तो यह कि यह योजना लागू होना ही बहुत मुश्किल है। बहुत-से पूँजीपति मज़दूरों की संख्या को बढ़ाकर दिखायेंगे और ये लाभ प्राप्त करेंगे, लेकिन वास्तव में अधिक मज़दूरों को काम पर नहीं रखेंगे। लेकिन पल भर को यह मान भी लिया जाय कि भारत के सारे छोटे व मँझोले पूँजीपति (क्योंकि इसका असर बड़े व इजारेदार पूँजीपतियों पर नगण्य होगा) मर्यादा पुरुषोत्तम व नैतिकता के मूर्त रूप बन कर इस योजना पर ईमानदारी से अमल करते हैं, तो वास्तव में होगा क्या?

पहली बात तो यह कि श्रमशक्ति पर पूँजीपतियों का प्रति इकाई ख़र्च कम होगा और इसलिए निवेश की हर इकाई के सापेक्ष उनके मुनाफ़े की दर बढ़ेगी। दूसरी बात यह कि कोई पूँजीपति इस योजना का चयन तभी करेगा जबकि उसकी प्रति इकाई लागत इस योजना का चुनाव करने से वाकई कम हो, जो इस बात पर भी निर्भर करेगा कि उसके विशिष्ट माल (वस्तु या सेवा) के लिए बाज़ार में पर्याप्त प्रभावी माँग है या नहीं। तीसरी बात, पूँजीपतियों को यह राहत जिस स्रोत से दी जायेगी, वह होगा सरकारी ख़ज़ाना, जो मूलत: और मुख्यत:, जनता से ही करों के रूप में वसूला जायेगा। इसका बोझ सबसे पहले तो अप्रत्यक्ष करों के रूप में आम मेहनतकश जनता पर डाला जायेगा और गौण रूप में आयकर के रूप में मध्यवर्ग पर डाला जायेगा। जहाँ तक पूँजीपतियों द्वारा दिये जाने वाले कारपोरेट टैक्स व अन्य शुल्कों की बात है, या विदेशों से उत्पादन के साधनों के सस्ते निवेश के लिए विशिष्ट आयातों पर लगने वाले शुल्कों की बात है, तो उसे बढ़ाना तो दूर उसे कम किया जायेगा। यह कोई भविष्यवाणी नही है, जो हम यहाँ मनमाने तरीक़े से कर रहे हैं। पिछले कई वर्षों में और विशेष तौर पर मोदी सरकार के 10 वर्षों के दौरान यह प्रक्रिया ही घटित हुई है। आइये, कुछ आँकड़ों पर निगाह डालते हैं।

2022-23 और 2024-25 के बीच कर से प्राप्त होने वाली कुल आय यानी सरकार का कर राजस्व 30,54,192 करोड़ रुपये से बढ़कर 38,30,796 करोड़ रुपये पहुँच गया। कैसे? मुख्य रूप से आम मेहनतकश जनता पर अप्रत्यक्ष करों और मध्यवर्ग पर आयकर का बोझ बढ़ाकर। दूसरी ओर, पूँजीपतियों द्वारा दिये जाने वाले कारपोरेट कर को लगातार घटाया गया। *इस बीच कारपोरेट कर कुल कर राजस्व के 29 प्रतिशत से घटकर 27 प्रतिशत रह गया। दूसरी ओर, आयकर का हिस्सा 26.8 प्रतिशत से बढ़कर 30.2 प्रतिशत और महज़ जीएसटी 27 प्रतिशत से बढ़कर 27.2 प्रतिशत हो गया।* ज्ञात हो कि पेट्रोलियम उत्पादों पर लगने वाला कर जीएसटी में शामिल नहीं है। *2022-23 में पेट्रोलियम उत्पादों से केन्द्र सरकार ने 4.28 लाख करोड़ रुपये जनता से वसूले जबकि राज्य सरकारों ने कुल 3.2 लाख करोड़ रुपये वसूले।* अगर इन्हें भी जनता पर डाले गये कर बोझ में जोड़ा जाय, तो यह आँकड़ा कहीं ज़्यादा हो जाता है। वहीं दूसरी ओर, देशी और विदेशी पूँजी को लाभ पहुँचाने के लिए कुल कर राजस्व में कस्टम शुल्क से आने वाले हिस्से को भी पिछले दो वर्षों में 7 प्रतिशत से घटाकर 6 प्रतिशत कर दिया गया है। कुछ लोगों को लगता है कि इससे केवल विदेशी पूँजी का लाभ पहुँचता है। लेकिन भारत के कुल आयात में करीब 13 प्रतिशत उत्पादन के साधनों का आयात है। इनके सस्ते होने का अर्थ है कि इसका फ़ायदा देशी पूँजी को भी मिलेगा क्योंकि उनकी लागत कम होगी और मुनाफ़े की दर बढ़ेगी। विदेशी पूँजी को तो इसका फ़ायदा होता ही है। कुल मिलाकर, सरकार के राजस्व में 14.5 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है, लेकिन सरकार के कुल ख़र्च में केवल 5.94 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है और यह बढ़ोत्तरी भी पूँजीपतियों के लिए होने वाले ख़र्च में हुई है क्योंकि सामाजिक ख़र्च में तो कमी आयी है। अब रोज़गार की बजट द्वारा प्रस्तावित योजनाओं पर वापस लौटते हैं।

दूसरी धोखेधड़ी वाली योजना का नाम है *इण्टर्नशिप योजना।* इसके तहत सरकार ने दावा किया है कि 500 कम्पनियाँ 1 करोड़ लोगों को इण्टर्नशिप देंगी। लेकिन सरकार यह कैसे सुनिश्चित करेगी कि 500 कम्पनियाँ हर वर्ष ऐसा करें, इसके बारे में कुछ भी नहीं बताया गया है। साथ ही, यह भी नहीं बताया गया है कि इण्टर्नशिप के बाद इन युवाओं व कामगारों को वास्तव में रोज़गार मिलेगा या नहीं। यानी, वास्तव में कम्पनियाँ इण्टर्नशिप के दौरान इनका अतिशोषण कर इन्हें बाहर फेंक दें, तो सरकार क्या करेगी? सरकार की ओर से वायदा किया गया है कि 500 कम्पनियाँ हर वर्ष 20,000 लोगों को अप्रेण्टिस के तौर पर रखेंगी और इसकी एवज़ में इन अप्रेण्टिसों को सरकार रु. 5000 वज़ीफ़ा देगी! यानी, ये कामगार काम तो कम्पनी के लिए करेंगे और उन्हीं के लिए मुनाफ़ा भी पैदा करेंगे, लेकिन उन्हें वज़ीफ़ा देगी सरकार! कहाँ से देगी? अपने ख़ज़ाने से! सरकारी ख़ज़ाना कहाँ से आता है? सीधे जनता की जेब से और जनता की मेहनत से, जिसकी विनियोजित लूट का एक हिस्सा कम्पनियाँ कर के रूप में देती हैं! यानी, यहाँ जनता से ही पैसे वसूलकर उसे वज़ीफ़ा देने की योजना है, जिसका पूरा फ़ायदा निजी कम्पनियाँ उठाने वाली हैं।

तीसरी बात जो बजट में कही गयी है और जो रोज़गार सृजन के नज़रिये से महत्व रखती है वह अतिलघु, लघु व छोटे उद्योगों के लिए किया गया आबण्टन। उसकी भी स्थिति देख लें। इनके लिए पहले के ही समान 22,137.95 करोड़ रुपये का आबण्टन किया गया है। लेकिन पिछले वर्ष से जारी औसत मुद्रास्फीति की दर से इस आबण्टन को प्रतिसन्तुलित करते हैं, तो वास्तविक अर्थों में यह 5 प्रतिशत की कमी है, क्योंकि एक वर्ष पहले इस राशि का जितना वास्तविक मूल्य था आज वह उससे 5 प्रतिशत कम है। नतीजतन, वे उद्योग जिनको सरकारी मदद से रोज़गार-सृजन होने की कोई सम्भावना है, उनके लिए आबण्टित बजट वास्तविक अर्थ में कम हुआ है।

रोज़गार-सृजन से जुड़ी अधिकांश योजनाएँ व बजट घोषणाएँ वास्तव में धोखेबाज़ी हैं। असल में, सरकार उस नवउदारवादी सोच के आधार पर चल रही है, जिसके अनुसार, मज़दूरी को अगर पर्याप्त नीचे किया जाय तो फिर सभी को रोज़गार दिया जा सकता है। वहीं प्रभात पटनायक जैसे कींसवादी इसका जवाब देते हुए दूसरे छोर पर जाते हैं और दावा करते हैं कि अगर सरकार पर्याप्त सामाजिक ख़र्च करे, तो इससे लोगों की औसत आय में बढ़ोत्तरी होगी और नतीजतन प्रभावी माँग में बढ़ोत्तरी होगी और फिर निवेश को भी प्रोत्साहन मिलेगा और अन्तत: रोज़गार में बढ़ोत्तरी होगी। कींस का मानना था कि सरकार सामाजिक ख़र्च द्वारा लोगों के जेबों में तब तक बिना मुद्रास्फीति के डर के पैसे डालती रह सकती है, जब तक कि लगभग पूर्ण रोज़गार की मंज़िल न आ जाय। *लेकिन वास्तव में पूँजीवादी व्यवस्था में आम तौर पर यह सम्भव नहीं होता है। विशेष तौर पर, तब यह कतई सम्भव नहीं होता है जब मुनाफ़े की औसत दर गिर रही हो।* क्योंकि तब सरकार द्वारा इस प्रकार का ख़र्च लोगों को कम ग़रज़मन्द बनाता है; लोग अच्छी मज़दूरी वाले रोज़गार के लिए इन्तज़ार कर सकते हैं; यह औसत मज़दूरी पर बढ़ने का दबाव पैदा करता है। एक पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीवादी राज्यसत्ता में काबिज़ कोई भी पूँजीवादी पार्टी यह काम नहीं कर सकती है। पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन और निवेश को नियन्त्रित और विनियमित करने वाला पहलू होता है मुनाफ़ा। उत्पादन, विनिमय और वितरण, सबकुछ मुनाफ़े की ख़ातिर होता है। जब श्रम की उत्पादकता बढ़ती है, नयी तकनोलॉजी और मशीनें आती हैं, तो निवेशित पूँजी में उत्पादन के साधनों पर ख़र्च मज़दूरी पर ख़र्च के सापेक्ष बढ़ता है। अगर मुनाफ़े की औसत दर ज़्यादा हो, तो इसके बावजूद कुल रोज़गार में बढ़ोत्तरी हो सकती है। लेकिन दीर्घकालिक मन्दी के दौर में, जो पिछले कई दशकों से जारी है, यह स्थिति ही बेहद कम और बेहद छोटे दौरों के लिए आयी है। अधिकांशत: हुआ यह है कि उत्पादन के साधनों पर पूँजी निवेश के मज़दूरी पर निवेश के सापेक्ष बढ़ने का नतीजा यह हुआ है कि मुनाफ़े की औसत दर में गिरावट आयी है और नतीजतन श्रम की उत्पादकता में होने वाली हर बढ़ोत्तरी का नतीजा यह हुआ है कि कुल रोज़गार सृजन की दर में कमी आयी है, क्योंकि मुनाफ़े की औसत दर में गिरावट के कारण नये निवेश की दर नगण्य है और पुराने निवेश के पैमाने में भी विस्तार नहीं हो रहा है। अगर सरकारी आँकड़े देखें तो लगता है कि भारत में श्रम की उत्पादकता में कोई बढ़ोत्तरी नहीं आ रही है। सरकारी आँकड़ों के मुताबिक श्रम की उत्पादकता की वृद्धि दर मात्र 2.5 प्रतिशत बतायी गयी है। लेकिन इसकी गणना सकल घरेलू उत्पाद को कुल कार्य के घण्टों से विभाजित करके की गयी है। यह वास्तव में श्रम की उत्पादकता में वृद्धि को सही रूप में नहीं बता सकता है। वास्तव में, अगर हम पूँजी-श्रम अनुपात को देखें, तो हम पाते हैं कि 1994-2002 के कालखण्ड से 2003-2017 के कालखण्ड के बीच यह 2.8 से दोगुना होकर 5.6 हो गया। यानी, पूरे 100 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी। इसलिए न तो सरकारी नवउदारवादी अर्थशास्त्री यह समझते हैं कि रोज़गार सृजन की समस्या का समाधान क्या है और न ही प्रभात पटनायक जैसे कींसवादी समझते हैं कि प्रभावी माँग को सामाजिक ख़र्च अधिक करके बढ़ाने से रोज़गार सृजन की समस्या का समाधान पूँजीवादी व्यवस्था में और ख़ास तौर पर संकटग्रस्त पूँजीवादी व्यवस्था में सम्भव ही नहीं है क्योंकि यह पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े की औसत दर को और ज़्यादा गिराती है। कींस और प्रभात पटनायक, सी. पी. चन्द्रशेखर और जयति घोष जैसे उनके काबिल चेले मछली को आसमान में उड़ाना चाहते हैं और पंछी को नदी में तैराना चाहते हैं।

संक्षेप में, रोज़गार की समस्या में लगातार बढ़ोत्तरी का एक कारण ढाँचागत है: जारी पूँजीवादी मन्दी। वैसे तो पूँजीवादी व्यवस्था अपनी आन्तरिक गति से हमेशा बेरोज़गारों की एक फ़ौज को क़ायम रखती है। लेकिन श्रम की सक्रिय सेना व श्रम की रिज़र्व सेना का अनुपात मुनाफ़े की औसत दर व संचय की गति पर निर्भर करता है। मोदी सरकार पूँजीपतियों को मुनाफ़े की गिरती औसत दर के संकट से राहत दिलाने के लिए ठीक उन कदमों को उठायेगी, जो बेरोज़गारी को और ज़्यादा बढ़ायेगी। यह सोचना कि औसत मज़दूरी को अगर और ज़्यादा गिरा दिया जाय, तो रोज़गार सृजन की दर में विचारणीय वृद्धि हो सकती है, मोदी सरकार का मुग़ालता है क्योंकि औसत मज़दूरी की दर भारत में पहले ही बेहद नीचे है और इसे नीचे गिराते जाने की एक सीमा है। मोदी सरकार को यह लगता है कि अगर नये रोज़गार की लागत को मज़दूरी को घटाकर और साथ ही मज़दूरी के "बोझ" का एक हिस्सा सरकारी ख़ज़ाने पर डालकर पूँजीपतियों को निवेश के लिए प्रोत्साहन दिया जाय, तो निवेश की दर को बढ़ाया जा सकता है। लेकिन सच्चाई यह है कि ये कदम निवेश की दर को बढ़ायेंगे या नहीं, यह कई अन्य कारकों पर निर्भर करता है, मसलन, मुनाफ़े की औसत दर, श्रम की उत्पादकता, घरेलू बाज़ार का आकार, आदि।

दूसरी बात यह कि मोदी सरकार द्वारा रोज़गार-सम्बन्धित प्रोत्साहन योजनाओं व इण्टर्नशिप जैसी योजनाओं के ज़रिये मज़दूरी के ख़र्च का एक हिस्सा सरकारी ख़ज़ाने पर डाल देने से भी पूँजीपति वर्ग द्वारा निवेश की दर में कोई ख़ास बढ़ोत्तरी नहीं होने वाली है। वजह यह कि मुनाफ़े की औसत दर में गिरावट की दर में कमी के कारण पूँजीपति इस "प्रोत्साहन" का इस्तेमाल अन्य अनुत्पादक गतिविधियों में ज़्यादा करेगा, मसलन, सट्टेबाज़ी, प्रापर्टी बाज़ार आदि में। यही पिछले 10 वर्षों में होता रहा है। लम्बी दूरी में देखें तो मोदी सरकार की इन धोखाधड़ी की योजनाओं से रोज़गार सृजन की दर में लम्बी दूरी में कोई विशेष अन्तर नहीं आने वाला है। सामाजिक ख़र्च में लगातार कटौती रोज़गार सृजन की दर को और भी कम करेगी।

(पेज 10 पर जारी)

मेहनतकश-मज़दूरों के हितों पर हमले और पूँजीपतियों के हितों की हिमायत का दस्तावेज़

(पेज 9 से आगे)

सरकार द्वारा सामाजिक ख़र्च में भारी कटौती : यानी मेहनतकशों, मज़दूरों, महिलाओं को मिलने वाली सहूलियतों और रोज़गार में कमी

हमने ऊपर ज़िक्र किया कि क्यों संकट के दौर में पूँजीवादी सरकारें मज़दूरों की औसत आय को कम करने वाली नीतियों को लागू करती हैं। इसी के ज़रिये व्यापक मेहनतकश अवाम को पूँजीपतियों के सामने अधिक ग़रज़मन्द बनाया जा सकता है, पूँजीपतियों के निवेश की लाभप्रदता को बढ़ाया जा सकता है। फ़ासीवादी मोदी सरकार ने पिछले 10 वर्षों में लगातार यह काम किया है और गठबन्धन सरकार के रूप में तीसरी बार सरकार बनाने के बावजूद उसने इस काम को नये बजट में बदस्तूर जारी रखा है। इसमें नीतीश व नायडू जैसे अवसरवादी जनविरोधी क्षेत्रीय बुर्जुआ नेता कोई अड़चन डालने नहीं जा रहे हैं। क्योंकि इस नवउदारवादी एजेण्डा पर सभी पूँजीवादी पार्टियों की सहमति है।

इस बार मोदी सरकार ने मनरेगा के बजट में कोई बढ़ोत्तरी नहीं की और उसे रु. 86,000 करोड़ पर ही रखा। यदि 5 प्रतिशत की औसत मुद्रास्फीति दर से इसे प्रतिसन्तुलित किया जाय, तो इसका अर्थ होगा कि मनरेगा के बजट में 5 प्रतिशत की कमी की गयी है। यह कहा गया है कि काम की माँग होने पर इस आबण्टन को बढ़ाया जा सकता है। लेकिन काम की माँग में बढ़ोत्तरी होगी कैसे जब इस योजना को लागू ही ढंग से नहीं किया जा रहा है? वक्त पर मज़दूरी नहीं मिलती, पूरे 100 दिन का काम नहीं मिलता और इसके कार्यान्वयन में सोचे-समझे तौर पर भ्रष्टाचार के बोलबाले को बरक़रार रखा गया है। ऐसे में काम की माँग कैसे पैदा होगी। वास्तव में, जो राशि बजट में आकलित की जाती है, मनरेगा के तहत उतनी भी ढंग से ख़र्च नहीं होती। बताने की आवश्यकता नहीं है कि मनरेगा ग्रामीण ग़रीब को भुखमरी के स्तर पर गाँव में रखने और कुछ अतिरिक्त आय का साधन देने के अलावा और कुछ नहीं करती। वास्तव में, यह एक रोज़गार योजना क़ानून है ही नहीं बल्कि उन्नीसवीं सदी के इंग्लैण्ड के ग़रीब क़ानून (पुअर लॉ) जैसा है जिसके तहत सबसे ग़रीब आबादी को बेहद कम मज़दूरी पर भुखमरी रेखा पर ज़िन्दा रहने भर का काम दिया जाता था। लेकिन सरकार उसे भी ढंग से लागू नहीं कर रही है ताकि मज़दूर आबादी को पूँजीपति वर्ग के समक्ष और ज़्यादा ग़रज़मन्द बनाया जा सके।

इसी प्रकार *महिला एवं बाल विकास मन्त्रालय* को आबण्टित राशि में 2.5 प्रतिशत की नाममात्र की बढ़ोत्तरी कर उसे 25,448.68 करोड़ रुपये से 26,092.29 करोड़ किया गया है। *लेकिन वास्तविक मूल्य में देखें, यानी यदि इस राशि को मुद्रास्फीति से प्रतिसन्तुलित करें, तो यह आबण्टन घटाया गया है।* नतीजतन, सभी स्कीम वर्करों को मिलने वाले मानदेय में बढ़ोत्तरी की कोई विशेष उम्मीद नहीं की जा सकती है। वहीं इसमें निवेश में कमी के कारण इस स्कीम के तहत भी रोज़गार का विस्तार नहीं होगा। हालाँकि स्कीम वर्करों को मज़दूर का कोई दर्जा भी नहीं दिया जाता और उन्हें सरकार का कर्मचारी नहीं माना जाता। नियोक्ता-कर्मचारी सम्बन्ध को छिपाकर उनके हक़ों को उनसे छीना जाता है और उनसे बेगार करवाया जाता है। इन योजनाओं के लिए आबण्टन में कमी से सरकार की मंशा ज़ाहिर हो जाती है कि वह स्कीम वर्करों को कतई न्याय नहीं देना चाहती और इसी अरक्षित अवस्था में रखकर उन्हें बेगार पर खटवाना चाहती है।

ग्रामीण विकास के बजट में कहने को 4 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की गयी है। उसे 1,71,069.46 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 1,77,562.05 करोड़ रुपये कर दिया गया है। लेकिन, फिर से, अगर हम मुद्रास्फीति की औसत दर से उसे प्रतिसन्तुलित करें तो वास्तविक मूल्य के लिहाज़ से उसमें कमी आयी है। युवा मामलों व खेल के लिए बजट आबण्टन में मात्र 1.3 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की गयी है और उसे 3,396.96 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 3,442.32 करोड़ रुपये किया गया है। यानी वास्तविक रूप में इस मद में आबण्टन में करीब 4 प्रतिशत की कमी हुई है। देश में युवाओं की हालत दयनीय क्यों है और क्यों 140 करोड़ की आबादी के बावजूद भारत ओलम्पिक में एक स्वर्ण पदक भी नहीं जीत पाया, यह समझना कोई मुश्किल काम नहीं है।

लेकिन सबसे बड़ी कटौती की गयी है उच्चतर शिक्षा के बजट में। उसे 17 प्रतिशत कम करके 52,244.48 करोड़ रुपये से घटाकर 47,619.77 करोड़ रुपये कर दिया गया है। मुद्रास्फीति से प्रतिसन्तुलित करने पर यह कटौती 22 प्रतिशत तक पहुँच जाती है। स्कूल शिक्षा व साक्षरता के लिए की गयी बढ़ोत्तरी मात्र 0.70 प्रतिशत है, जो वास्तविक मूल्य के रूप में गिरावट को दिखलाती है। यानी उच्चतर, माध्यमिक व प्राथमिक सरकारी शिक्षा के खर्चे में भारी कटौती की गयी है। दूसरी ओर, बजट एक मॉडल स्किल लोन योजना की बात करता है जो कि सरकारी गारण्टी के साथ रु. 7.5 लाख तक के शिक्षा लोन की इजाज़त देता है। साथ ही, उच्चतर शिक्षा के रु. 10 लाख तक के कर्ज़ के लिए 3 प्रतिशत वार्षिक ब्याज़ की सब्सिडी हेतु सरकारी समर्थन देने की बात की गयी है। लेकिन जब रोज़गार सृजन ही नहीं हो रहा है, तो छात्र ये ब्याज़ और मूलधन चुकायेंगे कैसे? वास्तव में, इन कदमों के ज़रिये सरकार सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था को तबाह कर रही है और निजी विश्वविद्यालयों, कॉलेजों व शिक्षण संस्थानों को फलने-फूलने का अवसर दे रही है। इसके अलावा, शिक्षा पर सरकार ख़र्च की जगह ऋण की व्यवस्था को लाकर वित्तीय पूँजी को भी छात्रों-युवाओं को लूटने का पूरा अवसर दे रही है।

संक्षेप में, सामाजिक ख़र्च में और जनता को लाभ पहुँचाने वाली अधिकांश सब्सिडियों में मोदी सरकार ने भारी कटौती की है। मूल उद्देश्य हैं औसत आय में कटौती कर मुनाफ़े की दर को पूँजीपतियों के लिए बढ़ाना, निजी क्षेत्र को भरपूर लाभ पहुँचाना और सार्वजनिक क्षेत्र को धीमी मौत मारना, ताकि नये लाभप्रद निवेश के अवसर पैदा हों।

खेती और बजट : धनी कुलकों, पूँजीवादी फार्मरों का तुष्टिकरण और ग़रीब मेहनतकश किसानों के लिए शून्य बटा सन्नाटा

कृषि और सम्बन्धित क्षेत्र के लिए होने वाले आबण्टन में कमी कर उसे 14,421.4 करोड़ रुपये से 14,053.3 करोड़ रुपये कर दिया गया है। वहीं दूसरी ओर, अधिकांश फसलों की एमएसपी को बरक़रार रखा गया है। ज़ाहिर है, इसका लाभ केवल धनी किसानों व पूँजीवादी ज़मीन्दारों को ही मिलेगा और उन्हीं को मिलता रहा है। लेकिन ग़रीब किसानों के लिए बजट में कुछ भी नहीं है, सिवाय नुकसान के। मसलन, खाद पर सब्सिडी को घटाकर 1,88,894 करोड़ से 1,64,000 करोड़ रुपये कर दिया गया है, हालाँकि जो सब्सिडी मिलती भी है उसका अधिकांश फ़ायदा धनी किसानों व कुलकों को ही होता है। वहीं खाद्य सब्सिडी को रु. 2,12,332 करोड़ से घटाकर 2,05,250 करोड़ रुपये कर दिया गया है। इसके अलावा, समूची आम जनता को नुकसान पहुँचाते हुए पेट्रोलियम सब्सिडी को घटाकर 12,240 करोड़ रुपये से 11,925 करोड़ रुपये कर दिया गया है। यानी जल्द ही आप पेट्रोल व डीज़ल की कीमतों में बढ़ोत्तरी की उम्मीद कर सकते हैं। बस इस वर्ष के विधानसभा चुनावों को बीतने दें!

कुल मिलाकर खेती के क्षेत्र को इस बजट में 1.52 लाख करोड़ रुपये का आबण्टन किया गया है। वैसे देखा जाय तो यह कम नहीं है। लेकिन यह मद किन चीज़ों पर ख़र्च होने वाला है। *पूँजीवादी फार्मरों के लिए बजट आबण्टन में 21.5 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की गयी है।* ग़ौरतलब यह है कि धनी पूँजीवादी किसानों व कुलकों ने मुख्य तौर पर दो चीज़ों पर आपत्ति की है: पहला, लाभकारी मूल्य की क़ानूनी गारण्टी न देना और दूसरा ऋण माफ़ न करना। कोई भी समझ सकता है कि यह धनी किसानों व कुलकों की माँगें हैं। पहली बात तो यह है कि लाभकारी मूल्य तो धनी किसानों को मिल ही रहा है, बस वे उसकी क़ानूनी गारण्टी चाहते हैं। लेकिन यह सम्भव नहीं है क्योंकि पिछले वर्ष एमएसपी के मातहत आने वाली फसलों का कुल मूल्य था 10 लाख करोड़ रुपये! इसका 25 प्रतिशत व्यक्तिगत उपभोग के लिए इस्तेमाल होता है, तो विपणन योग्य फसल का मूल्य हुआ 7.5 लाख करोड़ रुपये! लेकिन इसके लिए भी बजट आबण्टन सम्भव नहीं है क्योंकि कुल बजट ख़र्च ही करीब 45 लाख करोड़ होने वाला है इस साल! कुलकों के हिमायती कहते हैं कि सरकार को बस निजी ख़रीदारों के लिए एमएसपी पर ख़रीद करने को बाध्य करना चाहिए। सरकार यह कर नहीं सकती है क्योंकि यह उन पूँजीपतियों की "स्वतन्त्रता" में हस्तक्षेप होगा जो खेती के क्षेत्र के नहीं हैं और सरकार स्वयं पूरी ख़रीद कर ही नहीं सकती है। इसलिए सरकारी क़ानूनी गारण्टी लागू करना ही सम्भव नहीं है। मोदी सरकार या कोई भी पूँजीवादी सरकार इसे लागू नहीं कर सकती क्योंकि वह औद्योगिक-वित्तीय बड़ी पूँजी के हितों को नुकसान नहीं पहुँचा सकती है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि यह एमएसपी की गारण्टी किसी भी तरीक़े से देश के मज़दूरों, ग़रीब किसानों, अर्द्धसर्वहारा व आम मेहनतकश आबादी के लिए फ़ायदेमन्द है। एमएसपी खाद्यान्न की कीमतों को बढ़ाता है और इसलिए ग़रीब-विरोधी है। यहाँ तक कि यह उन ग़रीब किसानों के हितों को भी नुकसान ही पहुँचाता है, जिनकी सरकारी मण्डी तक पहुँच है क्योंकि जो मुख्य तौर पर अनाज का ख़रीदार है, विक्रेता नहीं, उसे भी खाद्यान्न की कीमतों में वृद्धि का नुकसान ही होता है।

इसके अलावा, मोदी सरकार खेती में तिलहन की खेती को प्रोत्साहित करना चाहती है क्योंकि तिलहन के मामले में भारत अपने घरेलू उपभोग के एक बड़े हिस्से के लिए आयात पर निर्भर है और यह देश के पूँजीपति वर्ग के लिए आम तौर पर अच्छा नहीं है। लेकिन यह प्रोत्साहन भी ग़रीब और मेहनतकश किसानों के काम नहीं आने वाला है, बल्कि धनी पूँजीवादी फार्मरों व कुलकों के ही काम आयेगा। ऐसी ही पहल दलहन को लेकर भी की गयी है। साथ ही, सब्ज़ियों के उत्पादन पर भी प्रोत्साहन दिया जा रहा है। लेकिन यह सबकुछ बड़ी पूँजीवादी खेती को ध्यान में रखकर किया जा रहा है।

संक्षेप में, गाँव के ग़रीब मेहनतकश किसानों के लिए मौजूदा बजट में कुछ भी नहीं है। न तो उनके लिए संस्थागत आसान कर्ज़ की कोई व्यवस्था की गयी है, न खेती के अवरचना निर्माण यानी सिंचाई आदि की उपयुक्त सरकारी व्यवस्था के लिए कोई प्रावधान किया गया है, न खेती के इनपुट्स को ग़रीब किसानों तक सस्ते में पहुँचाने की कोई व्यवस्था की गयी है, न ग़रीब किसानों से सरकारी ख़रीद की कोई व्यवस्था की गयी है। कुल मिलाकर, स्पष्ट है कि खेतिहर बुर्जुआज़ी और औद्योगिक-वित्तीय बुर्जुआज़ी के बीच के अन्तरविरोध के बावजूद मोदी सरकार ने वास्तव में धनी फार्मरों व कुलकों के हितों को कोई हानि नहीं पहुँचायी है और वास्तव में बजट के जनविरोधी प्रावधानों के हमलों का निशाना गाँव के ग़रीब हैं, यानी, खेतिहर सर्वहारा, अर्द्धसर्वहारा व ग़रीब मेहनतकश किसान।

कुल मिलाकर, मौजूदा बजट का मक़सद साफ़ है : संकट के दौर में पूँजीपतियों को अधिक से अधिक सहूलियतें, राहतें और रियायतें देना, निजीकरण की आँधी को बदस्तूर जारी रखना, मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश अवाम की औसत मज़दूरी व औसत आय को नीचे गिराकर उन्हें पूँजीपतियों के समक्ष अधिकतम सम्भव ज़रूरतमन्द और ग़रज़मन्द बनाना, पूँजीपतियों को करों से अधिक से अधिक मुक्त करना, सरकारी ख़ज़ाने में इससे होने वाली कमी को पूरा करने के लिए करों के बोझ को आम मेहनतकश जनता व मध्यवर्ग के ऊपर अधिक से अधिक बढ़ाना, जनता की साझा सम्पत्ति व सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक से अधिक पूँजीवादी लूट के लिए खोलना, रोज़गार सृजन के नाम पर ऐसी योजनाओं को लागू करना जो पूँजीपतियों के लिए बेहद सस्ते श्रम के अतिदोहन को सरल और सहज बनाये।

बढ़ते स्त्री-विरोधी अपराधों के पैदा होने की ज़मीन की शिनाख़्त करनी होगी!

कोलकाता के आरजी कर मेडिकल कॉलेज और अस्पताल से 9 अगस्त को एक दिल दहलाने वाली घटना सामने आयी। अस्पताल के सेमिनार हॉल में एक महिला डॉक्टर के साथ पहले बलात्कार किया गया और उसके बाद उसकी बर्बरता से हत्या कर दी गई। 31 साल की ट्रेनी डॉक्टर चेस्ट मेडिसिन डिपार्टमेण्ट में पी.जी. सेकेण्ड ईयर की स्टूडेण्ट थी। घटना के सामने आने के बाद पश्चिम बंगाल के अलग-अलग अस्पतालों के डॉक्टर और देश के कई राज्यों में डॉक्टर्स और आम नागरिक इस घटना के विरोध में सड़कों पर है और इस घटना के मुख्य आरोपी पर कार्रवाई की माँग कर रहे हैं।

कलकत्ता में हुई बर्बरता को लेकर लोग न्याय के लिए संघर्ष ही कर रहे थे कि तब तक देश के अलग-अलग कोनों से ऐसी घटनाओं के ख़बरों की बाढ़ आ जाती है। उत्तराखण्ड में एक 31 वर्षीय नर्स के साथ दुष्कर्म का मामला सामने आता है, बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर में एक दलित नाबालिग लड़की के साथ बर्बरता को अंजाम दिया जाता है तो वही दिल्ली के करावल नगर में एक 11 साल की छोटी बच्ची के साथ उसके मकान मालिक का बेटा रेप के जुर्म में पकड़ा जाता है और शाहबाद डेरी में 4 साल की छोटी बच्ची के साथ बलात्कार होता है। महाराष्ट्र के बदलापुर में सत्तारूढ़ पार्टी से जुड़े एक नेता द्वारा संचालित स्कूल में बच्चों के साथ दुष्कर्म के दोषियों को सज़ा दिलाने के लिए आन्दोलन कर रहे लोगों को ही पुलिसिया दमन का शिकार बनाया जाता है।

कोलकाता में आन्दोलन के व्यापक रूप ले लेने का बाद लोगों के ग़ुस्से को शान्त करने के लिये आनन-फ़ानन में एक आरोपी संजय रॉय की गिरफ़्तारी हुई है मगर अब भी मुख्य अपराधियों को गिरफ़्त में नहीं लिया गया है। घटना के सामने आने के बाद से ही भाजपा और तृणमूल कांग्रेस के बीच बयानबाज़ी का दौर शुरू हो गया है। राज्य के मुख्यमन्त्री ममता बनर्जी द्वारा इस मसले की जाँच के लिए एक एसआईटी गठित की गयी है, जो कोई नयी बात नहीं है! जब भी इस तरीके की घटनाएँ होती हैं तो मामले को शान्त करने के लिए या तो एसआईटी गठित की जाती है या मामले को सीबीआई को सौंप उसे ठण्डे बस्ते में डाल दिया जाता है।

घटना के हफ़्ते भर बाद भी इस मामले में उचित कार्रवाई न होने पर जब देशभर के डॉक्टरों ने पूर्ण हड़ताल की घोषणा की तब मजबूरन कोर्ट को इस मामले का तत्काल संज्ञान लेना पड़ा। कोर्ट ने हर बार की ही तरह इस मामले में भी खानापूर्ति करते हुए CISF को आरजी कर मेडिकल कॉलेज अस्पताल और हॉस्टल को सुरक्षा प्रदान करने का निर्देश दिया और मेडिकल स्टाफ़ व डॉक्टर्स के लिए सुरक्षा सम्बन्धी मसलों को देखने के लिए नेशनल टास्क फोर्स के गठन का आदेश दिया।

मगर इस घटना ने पुलिस से लेकर प्रशासन तक का रवैया एक बार फिर उजागर कर दिया। चौंकाने वाली बात है कि इस बर्बर घटना में पीड़िता का शवदाह हो जाने के बाद पुलिस ने एफ़आईआर दर्ज़ की। मेडिकल कॉलेज के प्रिंसिपल की इस घटना पर चुप्पी और इस्तीफ़ा देने के तत्काल बाद दूसरे मेडिकल कॉलेज का प्रिंसिपल बना दिये जाने से कई सवाल खड़े होते हैं! कितनी ही जाँच कमिटियाँ पहले भी बनी हैं, नये-नये नियम, क़ानून हर बार ऐसी घटनाओं के बाद बनाये जाते हैं मगर स्थिति सुधरने के बजाय और बिगड़ती जा रही है।

हमारे देश में स्त्री-सुरक्षा सम्बन्धी क़ानूनों की कमी नहीं है। 2012 में निर्भया की घटना के बाद जब आम जनता का ग़ुस्सा सड़कों पर फूटा था तब भी कई नियम-क़ानून बनाये गये थे परन्तु इस घटना के 12 साल बाद अगर हम देखे तो स्त्री-विरोधी अपराध कम होने की जगह बढ़ते ही गये हैं। इसलिए, यह प्रश्न हमारे सामने हर बार उपस्थित होता है कि क्या महज़ दोषियों को सज़ा दे देने से और सख़्त क़ानून बना देने से ऐसी घटनाएँ बन्द हो जायेंगी? इसका जवाब है बिल्कुल नहीं!

स्त्री-विरोधी अपराधों के समूल नाश के लिए हमें इन अपराधों के पैदा होने की ज़मीन को पहचानना होगा, इस बात पर सोचना होगा कि क्यों पैदा होते हैं ऐसे बलात्कारी और बर्बर मानसिकता के लोग? जब तक इन सवालों पर हम नहीं सोचेंगे तब तक ऐसी घटनाएँ घटती रहेंगी। ये तो वे घटनाएँ हैं जो सामने आ गयीं लेकिन हर रोज़ न जाने कितनी ही घटनाओं को सामने आने से पहले ही दबा दिया जाता है। ख़ासतौर पर गरीब बस्तियों और निम्न मध्यवर्ग के इलाकों में होने वाले ऐसे अपराधों को ताक़त और पैसे दम पर सामने नहीं आने दिया जाता।

हालात इतने बदतर हो चुके हैं कि इन अपराधों के दोषियों को पकड़ने और सज़ा देने के बजाय उन्हें खुली छूट मिल रही है। पुलिस प्रशासन से लेकर न्यायालय तक ऐसे अपराधियों को बरी करने और संरक्षण देने का काम खुलेआम कर रहा है।

कोई दिन नहीं जाता जब देश के किसी न किसी कोने में कोई न कोई बच्ची हवस का शिकार न होती हो। कहीं शिक्षक छात्राओं के उत्पीड़न में शामिल दिखते हैं, कहीं बालिका गृहों में बच्चियों पर यौन हिंसा होती है, कहीं झूठी शान के लिए लड़कियों को मार दिया जाता है, कहीं सत्ता में बैठे लोग स्त्रियों को नोचते हैं, कहीं जातीय या धार्मिक दंगों में औरतों पर ज़ुल्म होता है तो कहीं पर पुलिस और फ़ौज तक की वर्दी में छिपे भेड़िये यौन हिंसा में लिप्त पाये जाते हैं! ऐसा कोई क्षण नहीं बीतता जब बलात्कार या छेड़छाड़ की कोई घटना न होती हो! कोई भी पार्टी सत्ता में आ जाये किन्तु स्त्री विरोधी अपराध कम होने के बजाय लगातार बढ़ते ही जा रहे हैं मगर फ़ासीवादी भाजपा के शासनकाल में बर्बर स्त्री-विरोधी अपराधों में भारी बढ़ोत्तरी हुई है।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) का डेटा बताता है कि भारत में महिलाओं के ख़िलाफ़ अपराधों में भयानक वृद्धि हुई है। अकेले 2022 में 4,45,256 मामले दर्ज किये गये, जो हर घण्टे लगभग 51 एफ़आईआर के बराबर है।

फ़ासीवादी मोदी सरकार के शासनकाल में घृणित मानसिकता वाले लोगों को फलने-फूलने का बख़ूबी मौका मिल रहा है। स्वयं मोदी सरकार बलात्कारियों को पनाह दे रही है। बृजभूषण शरण सिंह, कुलदीप सिंह सेंगर, चिन्मयानन्द और कठुआ के बलात्कारियों के पक्ष में तिरंगा यात्रा निकालने के उदाहरण हम सबके सामने हैं। बिल्किस बानो के आरोपियों को भाजपा सरकार द्वारा "संस्कारी" क़रार देकर उन्हें बरी कर दिया जाता है। रामरहीम और आसाराम जैसे सज़ायाफ़्ता बलात्कारियों को बार-बार पेरोल देकर जेल से बाहर घूमने का मौक़ा दिया जाता है ताकि वे भाजपा के लिए वोट जुटा सकें।

संसद तक में बलात्कारियों और महिला अपराध में संलग्न नेताओं की भरमार है। अभी हाल ही में जारी एडीआर की रिपोर्ट बताती है कि 2024 के लोकसभा चुनाव में जीते 543 सांसदों में से 46 प्रतिशत (251) के ख़िलाफ़ आपराधिक मामले दर्ज हैं। इसके अलावा सांसदों में 31 प्रतिशत (170) ऐसे हैं जिनके ख़िलाफ़ बलात्कार, हत्या, अपहरण जैसे गम्भीर आपराधिक मामले दर्ज हैं।

भाजपा के 240 सांसदों में से 39 प्रतिशत (94), कांग्रेस के 99 सांसदों में से 49 प्रतिशत (49), सपा के 37 में से 57 प्रतिशत (21), तृणमूल कांग्रेस के 29 में से 45 प्रतिशत (13), डीएमके के 22 में से 59 प्रतिशत (13), टीडीपी के 16 में से 50 प्रतिशत (आठ) और शिवसेना (शिंदे) के सात में से 71 प्रतिशत (पांच) सांसदों के ख़िलाफ़ आपराधिक मामले दर्ज हैं। आरजेडी के 100 प्रतिशत (चारों) सांसदों के ख़िलाफ़ गम्भीर आपराधिक मामले दर्ज हैं।

बलात्कारियों के समर्थन में तिरंगा लेकर जुलूस निकालना, दुष्कर्मियों को समय से पहले जेल से रिहा करके उनका फूल मालाओं से स्वागत करना — ऐसे फ़ासीवादी दौर में ही सम्भव है। सत्ता में बैठे फ़ासीवादी आज घोर स्त्री विरोधी मानसिकता के हैं जो स्त्रियों को पुरुषों के अधीन रखने और उनके दोयम दर्जे को न्यायोचित ठहराते हैं।

बढ़ते स्त्री-विरोधी अपराधों की जड़ में एक तरफ तो फ़ासीवादी ताकतें हैं जो पितृसत्तात्मक मूल्य-मान्यताओं को बढ़ावा देने का काम करती हैं, दूसरी तरफ़ यह मुनाफ़ाख़ोर व्यवस्था है जिसने हर चीज़ की तरह स्त्रियों को भी ख़रीदी-बेचे जा सकने वाली वस्तु में तब्दील कर दिया है। विज्ञापनों व फ़िल्मी दुनिया की ज़्यादातर जगहों पर औरतों के जिस्म को भी एक वस्तु या कमोडिटी के रूप में ही पेश किया जाता है। मोबाइल फ़ोन के माध्यम से पोर्नोग्राफ़ी, अश्लील वीडियो व फिल्मों तक बच्चे-बच्चे की पहुँच है। सिनेमा-टीवी-सोशल मीडिया अश्लीलता और भोंडी संस्कृति के सबसे बड़े पोषक बने हुए हैं। पूरे समाज पर सांस्कृतिक पतनशीलता का घटाटोप छाया हुआ है। नेताशाही से लेकर नौकरशाही तक में बैठे लोग इस सांस्कृतिक पतन में सराबोर हैं। मुनाफ़े पर टिकी कोई समाज व्यवस्था जिस तरह की बीमार संस्कृति लोगों को दे सकती है वही हमें भी नसीब हो रही है। इसमें भी चाल-चेहरा-चरित्र-संस्कार-संस्कृति का रामनामी दुपट्टा ओढ़ने वाले साम्प्रदायिक फ़ासीवादियों के राज में हमारा समाज हर मामले में गर्त में समा गया है। इसी वजह से इस दौरान स्त्री विरोधी अपराधों में भी भयंकर उछाल देखने को मिला है।

इसलिए ही इस फ़ासीवाद के दौर में हमारा प्रतिरोध का तरीका भी महज़ जेण्डर सेंसटाइजेशन या कैंडल मार्च तक सीमित नहीं रह सकता। हमें इन बढ़ते स्त्री-विरोधी अपराधों के ख़िलाफ़ चुप्पी तोड़कर सामने आना होगा और इसके विरुद्ध लड़ाई को संगठित करना होगा। किसी भी स्त्री विरोधी घटना का यथासम्भव एकजुटता के साथ विरोध करें, दोषियों को न केवल कड़ी से कड़ी सज़ा दिलाने का प्रयास करें बल्कि उनका सामाजिक बहिष्कार भी करें। स्वस्थ संस्कृति और सही जीवन मूल्यों का प्रचार-प्रसार करें। नशे, बेरोज़गारी, अश्लीलता, अशिक्षा, ग़रीबी की पोषक सरकारों का जिस भी रूप में विरोध कर सकते हैं विरोध करें तथा मूल्ययुक्त शिक्षा और रोज़गार के मुद्दों पर आन्दोलन संगठित करें।

आज हम इन सरकारों और न्याय व्यवस्था के भरोसे बैठे नहीं रह सकते हैं। ऐसा करना अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने के समान होगा! स्त्री-विरोधी मूल्य-मान्यताओं को पैदा करने वाली और बलात्कार की मानसिकता की पोषक पितृसत्तात्मक पूँजीवादी व्यवस्था और फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ एक लम्बी लड़ाई की शुरुआत करनी होगी।

– स्त्री मुक्ति लीग

मज़दूर वर्ग की पार्टी कैसी हो?

(आठवीं किश्त)

● सनी

कम्युनिस्ट लीग मज़दूर आन्दोलन की पहले क्रान्तिकारी दौर का संगठन था। क्रान्तिकालीन यूरोप में सत्ता के चरित्र के अनुरूप ही संगठन का स्वरुप 'प्रचार के संगठन' का तथा गोपनीय था। इसके बाद मज़दूर आन्दोलन को पुनःसंगठित करने के लिए मार्क्स-एंगेल्स के नेतृत्व में जो संगठन खड़ा हुआ वह 'प्रथम इण्टरनेशनल' था जो 1864 में अस्तित्व में आया। इस संगठन का स्वरुप समझने से पहले उन ऐतिहासिक परिस्थितियों की चर्चा करना आवश्यक होगा जिसमें यह संगठन जन्मा।

1852 में यूरोप क्रान्तिकारी ज्वर के नीचे उतरने के साथ लीग भी भंग हो गयी। 1850 के दशक के आख़िरी दौर को छोड़ दें तो यह दशक मज़दूर आन्दोलन की पराजय का दशक था। मार्क्स एंगेल्स इस दशक में ज़रूरी अध्ययन को समय देते हैं। मार्क्स लन्दन में आकर बसते हैं और बेहद ग़रीबी में जीवन वहन करते हैं। क्रान्ति के अनुभवों का सार-संकलन करने के बाद मार्क्स अपना अधिकांश समय मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्तों को स्थापित करने में देते हैं वहीं एंगेल्स मार्क्सवादी विचारधारा को विकसित करने और उसकी रक्षा करने के लिए विविध विषयों में अपना शोध जारी रखते हैं। इस दौर में दोनों ही मज़दूर आन्दोलन के साथियों से क़रीबी सम्पर्क में थे और क्रान्तिकारी आन्दोलन की सम्भावनाओं पर नज़र रखे हुए थे।

मार्क्स-एंगेल्स ने इस दौर में उन क्रान्तिकारियों की आलोचना की जो 'गड्ढा खोदकर क्रान्ति की लहर' पैदा कर देना चाहते थे यानी क्रान्ति को केवल मनोगत शक्तियों के प्रयासों का नतीजा मानते थे। क्रान्तिकारी आन्दोलन का उभार महज़ क्रान्तिकारियों के मनोगत प्रयासों का नतीजा नहीं होता है, बल्कि बुनियादी तौर पर वह वस्तुगत परिस्थितियों का नतीजा होता है। 1858 में आर्थिक संकट के चलते मज़दूरों की जीवनस्थिति बेहद ख़राब हो चली थी लेकिन इसके बावजूद इस समय ही क्रन्तिकारी आन्दोलन नहीं फ़ैला, हालाँकि मज़दूरों के स्वत:स्फूर्त आन्दोलनों का फूटना इस दशक के अन्त तक शुरू होने लगा था। 1860 के दशक में जाकर मज़दूर आन्दोलन फिर से उफ़ान पर चढ़ता है लेकिन यह उस समय नहीं हुआ जिस समय का अनुमान मार्क्स-एंगेल्स ने पहले लगाया था। 1858 में आर्थिक संकट तो घिरा पर मज़दूर आन्दोलन की शक्तियाँ अभी बिखरी हुयी थीं। वे अगले 4-5 सालों में संगठित होती हैं। इस दौर में यूरोप से लेकर अटलाण्टिक के पार अमरीका में भी आर्थिक स्थितयाँ बदल रहीं थी।

यूरोप में इंग्लैण्ड में जिस तरह औद्योगीकरण हुआ उसके मुकाबले जर्मनी और फ्रांस अभी पिछड़े हुए थे। हालाँकि फ्रांस और जर्मनी दोनों में 1848 के बाद से तेज़ी से पूँजीवादी विकास हो रहा था। चार्टिस्ट आन्दोलन की हार के बाद ब्रिटिश मज़दूर आन्दोलन बिखराव का शिकार रहा। 1858 के आर्थिक संकट के बाद से मज़दूर संगठित होकर लड़ने की प्रक्रिया पुनः शुरू करते हैं। 1861 में इंग्लैण्ड में पहली ट्रेड काउन्सिल स्थापित होती है। फ्रांस में बुर्जुआ सत्ता ने 1848 की मज़दूर क्रान्ति को ख़ून में डुबो दिया था। कम्युनिस्ट लीग के भंग होने के बाद फ्रांस में मज़दूर आन्दोलन पर प्रूदोंवादियों का बोलबाला रहा जो कम्युनिस्ट व्यवस्था की स्थापना और निजी सम्पत्ति के खात्मे की जगह जगह छोटे उत्पादकों की निजी सम्पत्ति पर आधारित टुटपुँजिया व्यवस्था के यूटोपिया के हिमायती थे। उनके अनुसार मज़दूरों को को-ऑपरेटिव, पारस्परिक सहायकता की वित्तीय संस्थाएँ बनानी चाहिए। वे मज़दूरों की राजनीतिक गतिविधियों में शिरकत को ग़लत ठहराते थे। प्रूदों का दर्शन बर्बाद होते छोटे उत्पादकों का दर्शन था। वह पूँजीवाद द्वारा छोटी पूँजी के अनिवार्य नाश की समस्या का समाधान भविष्य में यानी वैज्ञानिक समाजवाद में नहीं देखते थे, बल्कि अतीत में, यानी टुटपुँजिया "समाजवाद" के यूटोपिया में देखते थे। चूँकि फ्रांस में औद्योगीकरण इंग्लैण्ड के बनिस्पत कम हुआ था इसलिए यहाँ छोटे उत्पादकों की आबादी सापेक्षिक रूप से इंग्लैण्ड के मुक़ाबले अधिक थी। 1860 तक परिस्थितियाँ बदलने लगी थी परन्तु अभी भी मज़दूर आन्दोलन पर प्रूदोंवादियों का बोलबाला था।

जर्मनी में भी मज़दूर आन्दोलन 1848 की हार के बाद बिखर गया था। ज़्यादातर मज़दूर संगठन लिबरल पूँजीपति वर्ग के नेतृत्व को स्वीकार कर रहे थे। 1860 तक यह परिस्थिति बदलने लगी और स्वतन्त्र मज़दूर संगठन अस्तित्व में आने लगे। जर्मनी में सामाजिक जनवादी पार्टी भी 1869 में अस्तित्व में आई जिसके नेता बेबेल और लिब्नेख्त भी थे। यह दोनों मज़दूर नेता मार्क्स के विचारों के समर्थक थे। जर्मन मज़दूर आन्दोलन में एक दौर में एक सीमा तक जर्मन नेता लासाल की भूमिका का एक पहलू सकारात्मक था जब उसने मज़दूर वर्ग के नेताओं को लिबरल पूँजीपति वर्ग से राजनीतिक तौर पर स्वतन्त्र मज़दूर वर्ग की पार्टी बनाने का सुझाव दिया। हालाँकि खुद लासाल की राजनीति "व्यवहारिक" होने के नाम पर अवसरवादी थी। उनकी यात्रा एक "वामपन्थी" भटकाव ("मज़दूर वर्ग एकमात्र क्रान्तिकारी वर्ग है") से दक्षिणपन्थी अवसरवादी भटकाव (जर्मन जनवाद-विरोधी मज़दूर-विरोधी सत्ता से समझौतापरस्ती) तक की यात्रा थी। "रियालपोलीतिक" के नाम पर लासाल ने बिस्मार्क से समझौते किये और मार्क्स के विचारों से चौर्यलेखन करते हुए भी उनकी दुर्व्याख्या की। लासाल ने सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयवाद के विपरीत पोलैण्ड को जर्मनी में शामिल करने की हामी भरी और बिस्मार्क का राष्ट्रवादी के नाम पर समर्थन किया। मार्क्स-एंगेल्स ने उन्हें संकीर्ण राष्ट्रवादी क़रार दिया था।

यूरोप के इन तीनों देशों में मज़दूर आन्दोलन में ठहराव टूट रहा था परन्तु यह विजातीय प्रवृतियों से प्रभावित था। 1860 के दशक में मज़दूर संगठनों में सक्रियता आई तो वैचारिक स्तर पर भी संघर्ष शुरू हुए। यह संघर्ष इण्टरनेशनल के बैनर तले मार्क्स ने सफलतापूर्वक चलाये। मार्क्स-एंगेल्स का इस दौर का लेखन आज भी कम्युनिस्ट आन्दोलन में विजातीय प्रवृतियों से संघर्ष चलाने का कुतुबनुमा है।

प्रथम इण्टरनेशनल की स्थापना

1860 के दशक में दो महत्वपूर्ण घटनाओं ने इण्टरनेशनल की स्थापना की पूर्वपीठिका तैयार की। एक, अमरीका में गृहयुद्ध के चलते कपास की आपूर्ति रुक गयी जिस वजह से यूरोप में कई कपास मिल बन्द हुई और बड़ी संख्या में मज़दूर सड़कों पर आ गये। मालिकों ने इस संकट का बोझ मज़दूरों के कन्धों पर डालने की कोशिश की जिसका मज़दूरों ने डटकर सामना किया। मजदूर वर्गीय 'लन्दन ट्रेड्स कमिटी' ने इस समय बेरोज़गार मज़दूरों की मदद के लिए विशेष कमिटी बनायी। ऐसी ही कमिटी फ्रांस में भी स्थापित हुई। इन दोनों कमिटियों के बीच संवाद स्थापित हुआ और यह इस दौर में अन्तरराष्ट्रीय एकजुटता की ओर बढ़ा पहला कदम था।

पोलैण्ड द्वारा रूस के ख़िलाफ़ बग़ावत मज़दूरों के बीच अन्तरराष्ट्रीय एकजुटता उठ खड़ी होने और उसके संगठन की ज़रूरत पर बल देनी वाली दूसरी घटना थी। इस बग़ावत का समर्थन करने के लिए इंग्लैण्ड के मज़दूरों ने एक मीटिंग का आयोजन किया और यूरोप के अन्य देशों के मज़दूरों को इसका समर्थन देने का आह्वान किया। इस बैठक में पूरे महाद्वीप के मज़दूरों के बीच सम्पर्क स्थापित करने और एकजुट संघर्ष के तरीक़े निकालने पर चर्चा की गयी। फ्रांस के मज़दूरों ने भी इस प्रस्ताव का समर्थन किया और आख़िरकार इन प्रयासों को आगे बढ़ाते हुए एक ऐसे संघ की स्थापना की गयी जो आम तौर पर मज़दूरों के संघर्षों को नेतृत्व दे सके। यह अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संघ यानी प्रथम इण्टरनेशनल था। मार्क्स को लन्दन से प्रतिनिधि के तौर पर आमन्त्रित किया गया था। संघ स्वतःस्फूर्त तौर पर उभरा था। इसका चरित्र कम्युनिस्ट लीग सरीखा नहीं था जिसमें कम्युनिस्ट नियमावली की स्वीकार्यता ज़रूरी थी, बल्कि यह एक संघ के चरित्र को रखता था जिसमें मज़दूर आन्दोलन में मौजूद तमाम प्रवृत्तियाँ मौजूद थीं जिनसे मार्क्स-एंगेल्स ने मज़दूर आन्दोलन की एकता के लिए संघ के भीतर संघर्ष चलते हुए एकता बरक़रार रखी।

एंगेल्स इसके बारे में बताते हैं:

> "हमारा संघ इसलिए कायम किया गया है कि वह उन मज़दूर समाजों के लिए मेल-मिलाप तथा संयुक्त गतिविधियों का केन्द्र बना रहे, जो भिन्न-भिन्न देशों में मौजूद हैं और एकसमान लक्ष्य अपनाये हुए हैं, अर्थात् मज़दूर वर्ग की रक्षा, विकास और पूर्ण मुक्ति (संघ की नियमावली की प्रथम धारा)। चूँकि बाकूनिन और उनके मित्रों के विशिष्ट सिद्धान्त इस धारा का खण्डन नहीं करते, इसलिए उनको सदस्य के रूप में अंगीकार करने तथा सभी स्वीकार्य उपायों से अपने विचारों का यथासम्भव प्रचार करने की इजाज़त के विरुद्ध कोई आपत्ति नहीं थी। हमारे संघ में तरह-तरह के लोग हैं - कम्युनिस्ट, प्रूदोंवादी, ट्रेडयूनियनवादी, सहकारी, बाकुनिनपन्थी, आदि, और हमारी जनरल काउन्सिल तक में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण रखने वाले लोग भी हैं।" *(एंगेल्स की कार्लो कफ़्येरो को चिट्ठी, 1871)*

प्रत्येक देश में इण्टरनेशनल के सदस्य 'राष्ट्रीय संघीय परिषद' द्वारा संचालित इण्टरनेशनल के मातहत एकजुट हो गए। समय-समय पर बुलाये जाने वाले अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों में श्रमिक वर्ग आन्दोलन के सबसे महत्वपूर्ण प्रश्नों पर चर्चा की जाती थी और इण्टरनेशनल की मुख्य समिति यानी जनरल काउन्सिल का चुनाव किया जाता था। जनरल काउन्सिल के पास महत्वपूर्ण शक्तियाँ थीं, लेकिन यह सांगठनिक दृष्टिकोण से निर्णायक केन्द्र नहीं था। इसका मुख्य रूप से कार्य अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा आन्दोलन को वैचारिक नेतृत्व प्रदान करना था। यह साफ़ है कि इण्टरनेशनल का सांगठनिक ढाँचा कम्युनिस्ट पार्टी के संगठन के सरीखा नहीं था परन्तु इसने अपने दौर में तथा भविष्य में जन्मने वाली पार्टियों को वैचारिक नेतृत्व प्रदान किया। पेरिस कम्यून इस मायने में इण्टरनेशनल की ही "सन्तान" था। पेरिस कम्यून ने मार्क्स के राज्य और क्रान्ति पर विचारों को सही सिद्ध कर दिया था। इस विषय पर हम अगली किश्त में लिखेंगे। बाकुनिन के षडयन्त्रों के चलते जब इण्टरनेशनल भंग हुआ तब तक वह अपनी भूमिका अदा कर चुका था। इण्टरनेशनल के भंग होने तक मार्क्स और एंगेल्स ने अपनी अवस्थिति से कई विजातीय प्रवृर्तियों से संघर्ष चलाया और देश स्तर पर खड़ी होने वाली मज़दूर पार्टियों के कार्यक्रम और विचारधारा के प्रश्न पर सही राह दिखाई। मार्क्स लिखते हैं:

> "इण्टरनेशनल की स्थापना समाजवादी और अर्द्ध-समाजवादी सम्प्रदायों (सेक्ट) के स्थान पर संघर्ष के लिए मज़दूर वर्ग का एक सच्चा संगठन क़ायम करने के लिए की गयी थी। उसकी अस्थायी नियमावली तथा उद्घाटन-घोषणा इस चीज़ की एकदम पुष्टि करती है। दूसरी ओर, यदि इतिहास की धारा ने सम्प्रदायवाद को पहले ही चूर-चूर न कर दिया होता, तो इण्टरनेशनल अपने को कायम नहीं रख सकता था। समाजवादी सम्प्रदायवाद के विकास और असली मज़दूर आन्दोलन के विकास में सदा से विलोम अनुपात रहा है, जिस अनुपात में एक बढ़ता है उसी अनुपात में दूसरा घटता है। सम्प्रदायों का उस समय तक (ऐतिहासिक दृष्टि से) औचित्य रहता है, जब तक कि मज़दूर वर्ग स्वतन्त्र ऐतिहासिक आन्दोलन के लिए परिपक्व नहीं हो जाता। परन्तु ज्यों ही उसमें यह परिपक्वता आ जाती है, त्यों ही सभी सम्प्रदाय सारभूत रूप से प्रतिगामी बन जाते हैं। इतिहास ने सभी जगह जो दिखाया है, उसकी पुनरावृत्ति इण्टरनेशनल के इतिहास में भी हुई। जो पुराना पड़ जाता है, वह नव-प्राप्त रूपों के अन्दर फिर पैर जमाने तथा अपनी स्थिति कायम करने की कोशिश करता है।"

"इण्टरनेशनल का इतिहास मज़दूर वर्ग के वास्तविक आन्दोलन के विरुद्ध स्वयं इण्टरनेशनल के भीतर अपनी स्थिति कायम रखने की कोशिश करने वाले सम्प्रदायों और सतही प्रयोगों के ख़िलाफ़ जनरल काउन्सिल के निरन्तर संघर्ष का इतिहास रहा है। यह संघर्ष कांग्रेसों में चलाया जाता था। पर उससे भी कहीं अधिक वह अलग-अलग शाखाओं के साथ जनरल काउन्सिल की निजी वार्ताओं में चला करता था।" *(मार्क्स की फ्रेडरिक बोल्ट को चिट्ठी, 1871)*

इण्टरनेशनल के भीतर मार्क्स और एंगेल्स ने प्रूदों, लासाल और बाकुनिन तथा अन्य धड़ों के विचारों के ख़िलाफ़ संघर्ष चलाया। सबसे पहला प्रमुख संघर्ष प्रूदों के ख़िलाफ़ चला। इण्टरनेशनल की कांग्रेस प्रूदों और मार्क्स के विचारों के संघर्ष का मंच बन गयी। प्रूदों के समर्थकों ने इण्टरनेशनल में ज़मीन के समाजीकरण के प्रस्ताव को नकार दिया था। प्रूदोंवादी हड़तालों का समर्थन नहीं करते थे, राजनीति में महिलों की भागीदारी के समर्थक नहीं थे। ज़्यादातर सभी प्रश्नों पर वे परास्त हुए। इण्टरनेशनल में दूसरा महत्वपूर्ण संघर्ष लासाल के समर्थकों से चला जिन्होंने संकीर्ण राष्ट्रवादी अवस्थिति अपनाई थी और कई मसलों में बिस्मार्क की नीतियों का समर्थन किया था। लासाल के ख़िलाफ़ चले संघर्ष में भी इण्टरनेशनल में मार्क्स की अवस्थिति मज़दूर आन्दोलन में मज़बूत हुई। अन्ततः इण्टरनेशनल में बाकुनिन के साथ सबसे तीखा और लम्बा संघर्ष चला था। बाकुनिन ने अपने संगठन 'समाजवादी जनवाद का सहबन्ध' को इण्टरनेशनल के साथ मिला लिया लेकिन उसका मकसद इण्टरनेशनल को ही तोड़कर उसे अपने सहबन्ध के मातहत लाना था। मार्क्स कहते हैं:

> "1868 के अन्त में रूसी बाकुनिन ने इस इरादे से इण्टरनेशनल में प्रवेश किया कि वह उसके अन्दर 'समाजवादी जनवाद को सहबन्ध' नाम से एक दूसरा इण्टरनेशनल क़ायम करें, जिसके नेता वह खुद हों। सैद्धान्तिक ज्ञान

(पेज 13 पर जारी)

मज़दूर वर्ग की पार्टी कैसी हो?

(पेज 12 से आगे)

से शून्य इस सज्जन ने यह दावा किया कि वह इस अलग संस्था में इण्टरनेशनल के वैज्ञानिक प्रचार का प्रतिनिधित्व करेगा और इण्टरनेशनल के अन्दर के इस दूसरे इण्टरनेशनल का विशेष कार्य यह प्रचार करना होगा।

"उनका कार्यक्रम खिचड़ी था। उसमें इस प्रकार की मज़ाकिया बातें शामिल थीं -- वर्गों की समानता (!), सामाजिक आन्दोलन के प्रस्थान-बिन्दु के रूप में उत्तराधिकार का उन्मूलन (यह सन्त-सीमोनवादी बकवास है), इण्टरनेशनल के सदस्यों पर लादे जाने वाले जड़सूत्र के रूप में अनीश्वरवाद, आदि, और मुख्य (प्रूदोंवादी) जड़सूत्र -- राजनीतिक आन्दोलन से परहेज़।

"ये बचकाने किस्से इटली और स्पेन में, जहाँ मज़दूर आन्दोलन की वास्तविक अवस्थाएँ अभी तक विकसित नहीं हैं, पसन्द किये गये (वहाँ अब भी इनका कुछ असर है); लैटिन स्विट्ज़रलैण्ड तथा बेल्जियम के कुछ अहंकारी, महत्वाकांक्षी और खोखले मतवादियों को भी वे अच्छे लगे।

"श्री बाकुनिन के लिए उनका सिद्धान्त (जो प्रूदों, सेंत-सीमोन, आदि से उधार लिया गया कूड़ा-कचरा मात्र है) गौण वस्तु था और आज भी है। वह यह दिखलाने का जरिया मात्र है कि वह भी कुछ है। पर सिद्धान्तकार के रूप में नगण्य बाकुनिन का षड्यन्त्रकारी का रूप उनका सहज, प्रकृत रूप है।" *(मार्क्स की फ्रेडरिक बोल्ट को चिट्ठी, 1871)*

एंगेल्स बाकुनिन के बारे में बताते हैं:

"बाकुनिन का अपना ही एक विचित्र सिद्धान्त है, प्रूदोंवाद और कम्युनिज़्म की खिचड़ी। मुख्य बात यह है कि वह पूँजी को अर्थात् पूँजीपतियों और उजरती मजदूरों के बीच विरोध को नहीं, जो सामाजिक विकास के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है, बल्कि राज्य को वह मुख्य बुराई मानते है, जिसे ख़त्म किया जाना चाहिए। जहाँ सामाजिक-जनवादी मज़दूरों की बड़ी संख्या हमारे इस विचार को अपनाती है कि राजकीय सत्ता एक ऐसे संगठन के अलावा और कुछ नहीं है, जिसे सत्तारूढ़ वर्गों - ज़मीदारों और पूँजीपतियों ने अपने लिए स्थापित किया है, ताकि वे अपने सामाजिक विशेषाधिकारों की रक्षा कर सकें, वहाँ बाकूनिन यह मानते हैं कि यह राज्य ही है जिसने पूँजी की सृष्टि की है, कि पूँजीपति के पास केवल राज्य की कृपा से ही पूँजी होती है। इसलिए राज्य चूँकि मुख्य बुराई है, सर्वोपरि राज्य को ही ख़त्म किया जाना चाहिए और तब पूँजी खुद जहन्नुम में पहुँच जायेगी । इसके विपरीत, हमारा विचार है कि पूँजी को - उत्पादन के समस्त साधनों के चन्द हाथों में संकेन्द्रण को खत्म कर दें और राज्य खुद ही ढह जायेगा। अन्तर बुनियादी है - पहले सामाजिक क्रान्ति के बिना राज्य के उन्मूलन की बात बकवास है। ठीक पूँजी का उन्मूलन हो सामाजिक क्रान्ति है और उसमें उत्पादन की पूरी पद्धति में परिवर्तन निहित है। लेकिन बकूनिन के लिए राज्य चूँकि मुख्य बुराई है, इसलिए कोई ऐसा काम नहीं किया जाना चाहिए, जो राज्य को - अर्थात् किसी भी प्रकार के राज्य को, चाहे यह जनतन्त्रीय हो या राजतन्त्रीय या कुछ और - जीवित रखे। इसलिए सारी राजनीति से पूरी विरति होनी चाहिए।" *(थियोडोर कुनो को एंगेल्स की चिट्ठी, 1872)*

ध्यान रखें : यहाँ एंगेल्स यह नहीं कह रहे हैं कि पूँजीवाद-विरोधी क्रान्ति यानी समाजवादी क्रान्ति में पूँजीवादी राज्यसत्ता का ध्वंस नहीं किया जायेगा। वह यह कह रहे हैं कि उसके ध्वंस के साथ समाजवादी राज्यसत्ता की स्थापना होगी, राज्यसत्ता की संस्था ही इतिहास से समाप्त नहीं हो जायेगी। उसके लिए समाजवादी संक्रमण के दौरान एक समूची सामाजिक क्रान्ति का दौर चलेगा, जिसके बाद वर्ग समाज से कम्युनिस्ट समाज में प्रयाण होगा और उसके साथ ही राज्यसत्ता समाप्त हो सकती है। दूसरी ओर, बाकुनिन अपने अराजकतावादी दृष्टिकोण से तत्काल ही राज्य के उन्मूलन का शेखचिल्ली का सपना दिखा रहे थे।

बाकूनिन के विचारों को सैद्धान्तिक तौर पर परास्त किया जा चुका था परन्तु वह अपनी तोड़-फोड़ की गतिविधियों में लगा रहा। वैसे भी पेरिस कम्यून के बाद मुख्यतः इण्टरनेशनल अपनी भूमिका निभा चुका था। बाकुनिन के षडयन्त्रों से बचने के लिए जनरल काउन्सिल को पहले न्यूयॉर्क स्थानान्तरित कर दिया गया और 1876 में उसे भंग कर दिया गया। मार्क्स ने इण्टरनेशनल को जिस मक़सद के लिए खड़ा किया था वह पूरा हो चुका था। एंगेल्स समाहार करते हुए कहते हैं कि इण्टरनेशनल

"...द्वितीय साम्राज्य *(लूई नेपोलियन बोनापार्त के शासन का दौर जो 1852 से 1870 के बीच था – अनु.)* के ज़माने का था, जब सारे यूरोप पर छाया हुआ उत्पीड़न मज़दूर आन्दोलन को, जो उस समय जग ही रहा था, एकता तथा सभी आन्तरिक वाद-विवाद से मुँह मोड़ लेने का निर्देश दे रहा था। यह वह घड़ी थी, जब सर्वहारा के आम अन्तरराष्ट्रीय हित उभरकर सामने आ रहे थे। जर्मनी, स्पेन, इटली तथा डेनमार्क आन्दोलन में अभी-अभी शामिल हुए थे या उसमें शामिल हो ही रहे थे। वास्तव में, 1864 में आन्दोलन का सैद्धान्तिक स्वरूप यूरोप में सर्वत्र अर्थात् जनसाधारण के बीच अभी बहुत अस्पष्ट था। जर्मन कम्युनिज़्म ने अभी मज़दूर पार्टी के रूप में अस्तित्व ग्रहण नहीं किया था। प्रूदोंवाद अभी इतना क्षीण था कि वह अपना सिक्का नहीं जमा सकता था। बाकूनिन की नयी बकवास ने अभी उसके दिमाग में जन्म भी नहीं लिया था; ब्रिटिश ट्रेड-यूनियनों के नेता तक यह सोचते थे कि नियमावली की प्रस्तावना में निर्धारित कार्यक्रम उन्हें आन्दोलन में शामिल होने का आधार प्रदान करता है। पहली बड़ी सफलता द्वारा सभी गुटों के इस भोलेपन-भरे सहयोग को ध्वस्त किया जाना अवश्यम्भावी था। यह सफलता थी कम्यून, जो निस्सन्देह बौद्धिक रूप से इण्टरनेशनल की सन्तान था, हालाँकि उसे जन्म देने के लिए इण्टरनेशनल ने उँगली तक नही हिलायी थी और इसके लिए इण्टरनेशनल को कुछ हद तक ठीक ही उत्तरदायी ठहराया गया। जब कम्यून के श्रेय की बदौलत इण्टरनेशनल यूरोप में नैतिक शक्ति बन गया, तो तुरन्त टुच्ची साज़िशें शुरू हो गयीं। हर प्रवृत्ति इस सफलता को अपने हितार्थ इस्तेमाल करना चाहती थी। विघटन, जो अवश्यम्भावी था, शुरू हो गया। एकमात्र जर्मन कम्युनिस्टों की, जो सचमुच पुराने व्यापक कार्यक्रम के आधार पर कार्य करने के लिए तैयार थे, बढ़ती शक्ति से ईर्ष्या ने बेल्जियन प्रूदोंवादियों को बाकूनिनवादी जोख़िमबाज़ों की बाँहों में पहुँचा दिया। हेग कांग्रेस वस्तुतः दोनों पार्टियों का ख़ात्मा थी। जिस एकमात्र देश में इण्टरनेशनल के नाम पर अब भी कुछ किया जा सकता था, वह अमेरिका था, और कार्यकारिणी वहीं स्थानान्तरित कर दी गयी थी, जो सुखद सहज बुद्धि का फल था। अब वहाँ भी उसकी प्रतिष्ठा समाप्त हो चुकी है और उसमें फिर से नया जीवन संचारित करना मूर्खता की बात होगी तथा वक़्त बर्बाद करना होगा। इण्टरनेशनल दस वर्ष तक यूरोपीय इतिहास के एक पक्ष पर -- उस पक्ष पर, जिसमें भविष्य अन्तर्निहित है- हावी रहा और वह पीछे मुड़कर अपने कार्य को गर्वपूर्वक देख सकता है। लेकिन पुराने रूप में उसकी उपयोगिता खत्म हो चुकी है। पुराने ढर्रे पर नये इण्टरनेशनल की -- स्थापना, तमाम देशों की सभी सर्वहारा पार्टियों के सहबन्ध के लिए मज़दूर आन्दोलन का वैसा ही आम दमन ज़रूरी होगा, जैसा 1848-1864 में होता रहा। परन्तु इसके लिए सर्वहारा जगत् अब अत्यन्त विशाल, अत्यन्त विस्तृत हो चुका है। मेरे विचार में, अगला इण्टरनेशनल -- मार्क्स की रचनाओं द्वारा कुछ वर्षों तक अपना प्रभाव उत्पन्न किये जाने के बाद -- विशुद्ध रूप से कम्युनिस्ट होगा और ठीक हमारे सिद्धान्तों की उद्घोषणा करेगा।" *(फ्रेडेरिक अडोल्फ़ ज़ोर्गे को एंगेल्स की चिट्ठी, 1874)*

इण्टरनेशनल ने अपने जीवन-काल में मज़दूर आन्दोलन को विजातीय प्रवृतियों से मुक्त कर मार्क्सवादी विचारों पर सुदृढ़ करने की भूमिका निभायी और भविष्य में खड़ी होने वाली सर्वहारा पार्टी संगठन को विचारधारा, राजनीति और संगठन के स्वरुप पर बेहद बुनियादी शिक्षाएँ दीं। अगली किश्त में हम पेरिस कम्यून तथा इण्टरनेशनल व इण्टरनेशनल के बाद बनी देश स्तर की मज़दूर पार्टियों की चर्चा करेंगे जिन्हें मार्क्स-एंगेल्स ने

हिण्डेनबर्ग की दूसरी रिपोर्ट में सट्टा बाज़ार विनियामक सेबी कटघरे में

(पेज 1 से आगे)

सेबी की पूर्णकालिक सदस्य बनी थीं और 2022 में उन्हें सेबी का चेयरपर्सन बनाया गया था। हिण्डेनबर्ग रिपोर्ट में दिखाया गया है कि माधबी और धवल बुच ने 2015 में बरमूडा और मॉरीशस जैसे विदेशी 'टैक्स हैवेन' में ऐसे फ़ण्ड में निवेश किये थे जिनके तार विनोद अडानी से जुड़े हैं। यही नहीं बुच दम्पत्ति सिंगापुर स्थित अगोरा पार्टनर्स और भारत स्थित अगोरा एडवाइज़री को भी संचालित करते रहे हैं जो अभी भी कन्सल्टेन्सी के ज़रिये मुनाफ़ा कमाती हैं। यह सेबी के नियमों के भी ख़िलाफ़ है। रिपोर्ट में यह भी दिखाया गया है कि सेबी के चेयरपर्सन बनने के 2 हफ़्ते पहले माधबी बुच ने अगोरा में अपनी हिस्सेदारी धवल बुच के नाम कर दी थी।

इतने संगीन आरोपों के सामने आने के बावजूद मोदी सरकार कान में तेल डालकर बैठी हुई है। गोदी मीडिया और बीजेपी का आईटीसेल निहायत ही बेशर्मी से बुच दम्पत्ति को भुक्तभोगी के रूप में प्रस्तुत करके इस पूरे मामले को भारत के ख़िलाफ़ एक अन्तरराष्ट्रीय साज़िश का हिस्सा बता रहा है। बुच दम्पत्ति ने एक संयुक्त बयान जारी करके हिण्डेनबर्ग रिपोर्ट को दुर्भावनापूर्ण बताया और अपने लम्बे 'सम्मानित' कॉरपोरेट कॅरियर की दुहाई दी है। लेकिन जिन निवेशों का हवाला हिण्डेनबर्ग रिपोर्ट में दिया गया है, उनसे बुच दम्पत्ति द्वारा इन्कार नहीं किया गया है। माधबी बुच ने दावा किया है कि उन्होंने सेबी का चेयरपर्सन बनने के बाद अपने निवेशों की जानकारी उस संस्था को दे दी थी। परन्तु जब पिछले साल हिण्डेनबर्ग की पहली रिपोर्ट में अडानी समूह के महाघोटाले का पर्दाफ़ाश हुआ था उस समय भारत की जनता इस सच्चाई से अनजान थी कि सेबी के चेयरपर्सन के निवेश के तार अडानी समूह से जुड़े हैं। उसके बाद उच्चतम न्यायालय के आदेश के बाद सेबी के नेतृत्व में कमेटी का भी गठन होता है, लेकिन उस समय भी हमें यह नहीं बताया जाता है कि जिस शख़्स को जाँच का जिम्मा सौंपा गया है उसके ख़ुद के हित अडानी के हितों से जुड़ हुए हैं। ऐसे में भला यह जाँच निष्पक्ष कैसे हो सकती है?

यह पूरा प्रकरण आज के पूँजीवाद के परजीवी व लुटेरे चरित्र और उसकी ग़लाज़त को उजागर करता है। वित्तीय पूँजी के आवारा, परजीवी और मानवद्रोही चरित्र पर पर्दा डालने के लिए सेबी जैसे विनियामक संस्थाओं को बनाया जाता है और उन्हें स्वायत्त व निष्पक्ष संस्थाओं के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। लेकिन हिण्डेनबर्ग रिपोर्ट से यह दिन के उजाले की तरह साफ़ हो गया है कि ऐसी संस्थाओं की स्वायत्तता और निष्पक्षता एक छलावा है। ऐसी संस्थाएँ बनायी ही इसलिए जाती हैं कि तमाम लूट-खसोट और घोटालों के बावजूद लोगों का भरोसा पूँजी की इस मानवद्रोही दुनिया में बना रहे और निष्पक्षता और स्वायत्तता का ढोग-पाखण्ड करके लोगों की आँख में धूल झोंकी जाती रहे। लेकिन इस व्यवस्था के ही अन्तरविरोधों के चलते यह ढोंग-पाखण्ड लम्बे समय तक बरकरार नहीं रह पाता। अब जबकि सेबी की सच्चाई लोगों के सामने आ चुकी है, इस व्यवस्था के पैरोकार बुद्धिजीवी और थिंक टैंक 'डैमेज कन्ट्रोल' की कवायद में जुट गये हैं। कोई सेबी को वाकई निष्पक्ष, पारदर्शी और स्वायत्त बनाने के लिए कुछ नियम-क़ानूनों में बदलाव की बात कर रहा है तो कोई ज्वाइंट पार्लियामेण्टरी कमेटी गठित करने की माँग उठा रहा है, ताकि इस व्यवस्था से लोगों का भरोसा न उठ जाए। लेकिन क्या हम भूल सकते हैं कि ऐसी कमेटियों और नियम-क़ानूनों में बदलावों के बावजूद घोटालों का आकार और उनका रूप समय के साथ ज़्यादा से ज़्यादा व्यापक होता गया है। 1990 के दशक में हर्षद मेहता का घोटाला हुआ था, उस समय भी सट्टाबाज़ार को विनियमित करने के लिए नये नियम-क़ानून बनाए गये और सेबी जैसी संस्थाओं को ज़्यादा स्वायत्त और निष्पक्ष करने का ढोंग-पाखण्ड रचा गया। लेकिन उसके बाद से सट्टा बाज़ार में क़िस्म-क़िस्म के घोटाले लगातार होते रहे हैं और अब तो इन घोटलों के तार सीधे सेबी की मुखिया आ जुड़े हैं। इसलिए मज़दूर वर्ग को लूट-खसोट और सट्टाख़ोरी पर टिके वित्तीय पूँजी के इस मानवद्रोही तन्त्र को विनियमित करने की नहीं बल्कि उसपर ताला लगाने की तैयारी करनी चाहिए। जब तक पूँजीवाद रहेगा, तब तक उसमें सट्टाबाज़ी, जालसाज़ी और भाँति-भाँति के घोटाले होते ही रहेंगे।

मोदी-शाह सरकार की नयी अपराध संहिताओं का फ़ासीवादी जनविरोधी चरित्र

● शाम मूर्ति

एक जुलाई 2024 से भारत में "नयी भारतीय क़ानूनी प्रणाली" के तहत नये आपराधिक क़ानूनों को लागू कर दिया गया है। इसे 1 अगस्त 2023 को भारत के गृहमन्त्री अमित शाह द्वारा लोकसभा में पेश किया गया था। नवम्बर 2023 में संसदीय स्थायी समिति द्वारा की गई कुछ सिफ़ारिशों को शामिल करने के बाद इन्हें संसद में फिर से पेश किया गया था। 20 और 21 दिसम्बर 2023 को संशोधित विधेयकों को क्रमशः संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया और 25 दिसम्बर, 2023 को भारत के राष्ट्रपति की स्वीकृति के बाद इन्हें राजपत्र के रूप में प्रकाशित किया गया था।

आइए, अब विस्तार से समझते हैं कि यह क़ानून क्यों देश की जनता के लिए ख़तरनाक हैं। भारतीय न्याय संहिता बीएनएस (2023) को भारतीय दण्ड संहिता 1860 के स्थान पर लाया गया है। लेकिन बीएनएस (2023) में आईपीसी की अधिकांश संरचना को बरकरार रखा गया है। भारतीय न्याय संहिता में 20 अध्याय और 358 खण्ड (सेक्शन) हैं। बीएनएस 2023 में आईपीसी के मुक़ाबले धाराओं की संख्या को 511 से घटाकर 358 कर दिया गया है। यह एक लम्बी-चौड़ी फ़ासीवादी आपराधिक संहिता है। इसमें घृणा अपराध तथा भीड़ द्वारा हत्या सहित 21 नये अपराध जोड़े गये हैं तथा 33 अपराधों के लिए कारावास की सज़ा बढ़ायी गयी है। इसमें हिरासत (रिमाण्ड), हिट एण्ड रन, आतंकवाद, संगठित अपराध जैसे अपराध भी शामिल किये गये हैं और राजद्रोह को राष्ट्रीय अखण्डता को ख़तरे में डालने वाले कृत्यों के रूप में फिर से पहले से भी दमनकारी रूप में परिभाषित किया गया है।

दूसरा, भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता 2023 (बीएनएसएस) को दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की जगह पर लाया गया है। यह गिरफ़्तारी, ज़मानत और हिरासत के अलावा अन्य प्रक्रियाओं और शर्तों को निर्धारित करेगा। बीएनएस 2023 तमाम परिवर्तनों के बावजूद सीआरपीसी के अधिकांश प्रावधानों को बरकरार रखता है। नये क़ानून में सीआरपीसी की 484 धाराओं के बजाय कुल 533 धाराएँ हैं। यह जमानत के प्रावधानों में संशोधन करता है, सम्पत्ति की कुर्की का दायरा बढ़ाता है और पुलिस और मजिस्ट्रेट की शक्तियों में बदलाव करता है। तीसरा, भारतीय साक्ष्य अधिनियम (बीएसबी) 2023 को इण्डियन एविडेंस एक्ट 1872 की जगह पर लाया गया है। यह भी पहले से ज़्यादा दमनकारी है। इसमें कुल 170 धाराएँ हैं। नये क़ानून में 6 धाराएँ रद्द कर दी गयी हैं, वहीं नये एक्ट में दो नयी धाराएँ और 6 उप-धाराएँ जोड़ी गयी हैं। इसमें इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य को भी स्वीकार्यता दी गयी है। देश भर के 650 से ज़्यादा ज़िला न्यायालयों और 16,000 पुलिस थानों में "नयी" व्यवस्था को लागू भी कर दिया गया है। तीसरे कार्यकाल में मोदी सरकार द्वारा यह दावा किया जा रहा है कि "नयी" आपराधिक क़ानून प्रणाली के ज़रिये सम्बन्धित प्रावधानों को समेकित और संशोधित करके "कायापलट" कर दिया जायेगा। आइये मोदी-शाह सरकार के कुछ दावों की थोड़ा पड़ताल कर ली जाये।

पहला दावा : भारत के गृहमन्त्री अमित शाह कहते हैं कि पिछले क़ानून "उपनिवेशवाद की विरासत" थे और "ग़ुलामी की मानसिकता" के प्रतीक थे जिन्हें आज की स्थितियों के अनुकूल बनाने की ज़रूरत है। इतिहास के वाकिफ़ विशेषकर संघियों के इतिहास से परिचित किसी भी व्यक्ति को यह बात हज़म नहीं होगी क्योंकि "औपिवेशिक विरासत" की बात ऐसे लोगों के मुँह से सुनना थोड़ा अजीब लगता है, जिनका पूरा इतिहास ब्रिटिश औपिवेशिक शासकों से प्रेम-प्रसंग चलाने का, उनके सामने माफ़ीनामे लिखने का, उनके लिए मुख़बिरी तक करने का रहा हो। मोदी सरकार और उसकी भोंपू मीडिया इस मामले को ऐसे पेश कर रहे हैं कि यह पूरी कवायद अंग्रेजों के समय के दण्ड के विधान के बदले "रामराज्य का न्याय" को लागू करने के लिए है, जिसमें सारी दिक़्क़तों को दूर कर दिया जायेगा! लेकिन क़ानून की दुनिया में इस "रामराज्य" का अर्थ है हर प्रकार के जन प्रतिरोध को कुचलने के औज़ारों को तैयार करना।

नयी अपराध व दण्ड संहिता के ज़रिये दरअसल फ़ासीवादी मोदी सरकार का असली मक़सद जनवादी दायरों को संकुचित करना और असहमति की जनपक्षधर आवाज़ों को कुचलना है। कश्मीर से लेकर केरल तक और गुजरात से लेकर उत्तर-पूर्व के राज्यों तक, आम जनता के हालात को देखा जा सकता है कि कैसे उनके जीवन को नर्क बना दिया गया है। यहाँ तक की मोदी सरकार बुर्जुआ विपक्षी नेताओं, दलों का भी हर तरीक़े से गला घोंटने की कोशिश करती रही है। मोदी सरकार की असली मंशा अंग्रेज़ों से एक क़दम और आगे बढ़कर दमनकारी दण्डात्मक क़ानून लागू करना है। जनता के बीच हर तरीक़े से नंगी हो चुकी फ़ासीवादी मोदी सरकार को आम चुनाव में समूची राज्यसत्ता में आन्तरिक पकड़ और गोदी मीडिया के प्रचार तथा पूँजीपति वर्ग के अकूत आर्थिक समर्थन के बावजूद मुँह की खानी पड़ी और किसी तरह से नीतीश व चन्द्रबाबू नायडू जैसे घृणास्पद अवसरवादियों की उधार की बैसाखी पर सरकार बनानी पड़ी। लेकिन पूँजीपतियों ने अपना समर्थन मन्दी के दौर में मोदी सरकार को इसीलिए दिया था कि मेहनतकश जनता की औसत मज़दूरी व आय को घटाने के लिए उनके आर्थिक व राजनीतिक हितों पर हमले किये जाएँ और इसके सम्भावित प्रतिरोध को कुचलने के लिए एक दमनकारी क़ानूनी व प्रशासनिक ढाँचा खड़ा किया जाय। नयी अपराध व दण्ड संहिताओं के साथ मोदी सरकार अपने तीसरे कार्यकाल में इसी काम को अंजाम तक पहुँचा रही है। इस पर विपक्ष के बड़े हिस्से की भी मौन सहमति है क्योंकि विपक्ष की सभी पार्टियाँ भी मालिकों, व्यापारियों, कुलकों, सूदखोरों की ही पार्टियाँ हैं।

दूसरा दावा : गृहमन्त्री अमित शाह ने कहा कि सभी के साथ और विस्तारपूर्वक चर्चा के बाद इन्हें लागू किया गया है। क़ानून बनाने से पहले इसके हर पहलू पर चार साल तक विस्तार से अलग-अलग पक्षों के साथ चर्चा की गयी है। लेकिन अगर चर्चा की होती तो जनवरी 2024 में इसी क़ानून में 'हिट एण्ड रन' के अत्यधिक कठोर प्रावधानों के कारण इनके ख़िलाफ़ ट्रक व अन्य वाहन चालकों की हड़ताल नहीं हुई होती। ज़बरदस्त व्यापक हड़ताल के कारण सरकार को अपने क़दम तुरन्त पीछे हटाने पड़े। मोदी के पिछले कार्यकाल के दौरान केन्द्र सरकार की ओर से केन्द्रीय गृहमन्त्री अमित शाह ने तीन बिलों को पिछले साल 11 अगस्त 2023 को पेश किया था, जिसके बाद उन्हें समीक्षा के लिए भाजपा सांसद बृजलाल की अध्यक्षता वाली 31 सदस्यीय संसदीय स्थायी समिति (स्टैण्डिंग कमेटी) के पास भेज भी दिया गया था। फिर "मानसून सत्र के अन्तिम दिन अपनी पहली प्रस्तुति के क़रीब चार महीनों बाद कुछ "औपचारिकताओं", "विशेषज्ञों" के "सलाह-विमर्श" के बाद, मूल मसौदे में ही मामूली फेरबदल कर के, नये संशोधित विधेयकों को 12 दिसम्बर 2023 को गृह मन्त्री अमित शाह ने लोकसभा में दोबारा पेश किया। तब विपक्ष के 144 सदस्य सांसदों को निलम्बित कर दिया गया था! यानी बिना बहस के आनन-फ़ानन में दोनों सदनों में इन विधेयकों को पारित कर दिया गया। वैसे विपक्ष इस पर बहस भी बस दिखावे व जुबानी जमाख़र्च के लिए ही करता। इसके खिलाफ़ वह कोई आन्दोलन या अभियान नहीं चलाने वाला। वजह यह कि इन संहिताओं की ज़रूरत आम तौर पर भारत के सरमायेदार हुक्मरानों को है। दरअसल, इन संहिताओं की असल रूपरेखा कोविड महामारी के दिनों में ही तय की गयी थी, जिन्हें बस अमली जामा पहनाना था। याददिहानी के लिए ऐसे ही मज़दूर विरोधी नये लेबर कोड को भी उसी दौरान पारित करवा लिया था। क्या आपको "न्यायपूर्ण रूप से सबकी सहमति" की क्रोनोलोजी समझ आयी?

तीसरा दावा : क़ानूनों का आधुनिकीकरण या "भारतीयकरण" किया जायेगा। वास्तव में भारत में अपने वर्तमान स्वरूप में मौजूद आपराधिक दण्ड संहिताएँ किसी भी दृष्टि से जनपक्षधर या जनवादी नहीं थीं और *उत्तर-औपनिवेशिक भारतीय राज्यसत्ता द्वारा, मूलतः और मुख्यतः चन्द बदलावों के साथ औपनिवेशिक सत्ता से उधार ले ली गयी थी। इनका ग़ैर-जनवादी दमनकारी चरित्र आज़ादी के तत्काल बाद ही स्पष्ट होता चला गया था।* लेकिन साथ ही नयी दण्ड संहिताएँ भारतीयकरण के नाम पर उन्हीं औपनिवेशिक संहिताओं का फ़ासीवादीकरण कर रही हैं, एक पुलिस-राज्य स्थापित करने का प्रयास कर रही हैं। भारतीयकरण के नाम पर वास्तव में फ़ासीवादी क़ानूनी संरचना को खड़ा किया गया है।

चौथा दावा : गृहमन्त्री अमित शाह तीनों नये क़ानूनों को दण्ड की जगह न्याय देने वाला बता रहे हैं। लेकिन फ़ासिस्टों का "न्याय" अंग्रेज़ों के काले क़ानूनों से ज़्यादा बर्बर चरित्र रखता है। इसे इनके जर्मनी और इटली आदि के पूर्वजों के इतिहास से समझा जा सकता है। एक पुरानी परिभाषा को संशोधित करके नये अन्दाज़ में पेश किया जा रहा है। नये आपराधिक क़ानून किस हद तक और किस तरह जनता के हितों व अधिकारों की रक्षा करेंगे, इसे समझने के लिए किसी राकेट साइंस की ज़रूरत नहीं है। मोदी सरकार बेरोज़गारी-महँगाई-भ्रष्टाचार से लेकर साम्प्रदायिक तनाव और हिंसा बढ़ाने के मामलों के बढ़ने की वजह से अपनी घटती हुई लोकप्रियता से ख़ौफ़ज़दा है। ठीक इसी वजह से 2024 के लोकसभा चुनावों से पहले मोदी सरकार इस न्याय संहिता को लागू करने से डर रही थी। चूँकि अब चुनावों में कम सीटों के बावजूद नीतीश-नायडू की बैसाखियों के सहारे मोदी सरकार बन गयी है, तो देश की क़ानून व्यवस्था को फ़ासीवादी हुक्मरान अब और चाक-चौबन्द कर रहे हैं ताकि किसी भी क़िस्म के जनाक्रोश को पनपने से पहले ही कुचल देने के इन्तज़ामात हो जाएँ।

पाँचवा दावा : राजद्रोह क़ानून को जड़ से समाप्त कर दिया गया है और नये क़ानून में आज के समय के हिसाब से धाराएँ जोड़ी गयी हैं। राजद्रोह (धारा 124 ए आईपीसी) को अपराध के रूप में क़ानूनी तौर पर निरस्त करने की सच्चाई क्या है? नयी भारतीय न्याय संहिता के तहत सबसे अहम बदलावों के रूप में प्रचारित किया जा रहा है कि राजद्रोह (धारा 124 ए आईपीसी) को अपराध के रूप में क़ानूनी तौर पर निरस्त किया गया है। असल में राजद्रोह क़ानून से राजद्रोह शब्द को हटा दिया गया है, किन्तु सरकार के ख़िलाफ़ उठाने वाली किसी भी आवाज़ को "देश की सम्प्रभुता पर हमला" के नाम पर दण्डित करने की व्यवस्था भी लागू कर दी गयी है। वह मौजूदा क़ानून राजद्रोह के क़ानून से कहीं बदतर है और असल में यह जनवादी अधिकारों पर बड़ा हमला है। गृह मन्त्रालय ने क़ानून से "राजद्रोह" की आईपीसी पूर्व धारा 124 को हटा कर धारा 150 को ला दिया है। यह अपने पूर्वर्ती विधान की तुलना में कहीं अधिक अस्पष्ट और व्यापक शब्दावली वाला है। नये क़ानून के मुताबिक़ "भारत की सम्प्रभुता, एकता और अखण्डता को ख़तरे में डालना" अपराध होगा। आईपीसी को प्रतिस्थापित करने वाले भारतीय न्याय संहिता, 2023, के भाग VII का शीर्षक ही है "राज्य के विरुद्ध अपराध" जिसकी धारा 150 "भारत की सम्प्रभुता, एकता और अखण्डता को ख़तरे में डालने वाले कृत्यों" को अपराध मानती है। धारा 150 में यह भी कहा गया है- "जो कोई भी, उद्देश्यपूर्वक या जानबूझकर, बोले गये या लिखे गये शब्दों से, या संकेतों द्वारा, या दृश्य प्रतिनिधित्व द्वारा, या इलेक्ट्रॉनिक संचार द्वारा या वित्तीय साधनों के उपयोग से, या अन्यथा, अलगाव या सशस्त्र विद्रोह या विध्वंसक गतिविधियों को उत्तेजित करता है या उत्तेजित करने का प्रयास करता है या अलगाववादी गतिविधियों की भावनाओं को प्रोत्साहित करता है या भारत की सम्प्रभुता या एकता और अखण्डता को ख़तरे में डालता है; ऐसे किसी भी कार्य में शामिल होता है या करता है, उसे सात साल से लेकर आजीवन कारावास से दण्डित किया जायेगा और जुर्माना भी लगाया जा सकता है। धारा 124 ए निम्न प्रावधान करती है : "जो कोई भी बोले गये या लिखे गये शब्दों से, या संकेतों द्वारा, या दृश्य प्रतिनिधित्व द्वारा, या अन्यथा, भारत में क़ानून द्वारा स्थापित सरकार के प्रति घृणा या अवमानना लाता है या लाने का प्रयास करता है, या उत्तेजित करता है या असन्तोष पैदा करने का प्रयास करता है, उसे आजीवन कारावास से दण्डित किया जायेगा, जिसमें जुर्माना जोड़ा जा सकता है, या कारावास, जिसे तीन साल तक बढ़ाया जा सकता है, या जुर्माने से दण्डित किया जा सकता है।"

आप देख सकते हैं कि नये क़ानून के अन्तर्गत "अलगाव उकसाना", "सशस्त्र विद्रोह", "विध्वंसक गतिविधियाँ"

(पेज 15 पर जारी)

मोदी-शाह सरकार की नयी अपराध संहिताओं का फ़ासीवादी जनविरोधी चरित्र

(पेज 14 से आगे)

और "अलगाववादी गतिविधियों की भावनाओं को प्रोत्साहित करने" जैसे कृत्यों का ज़िक्र किया गया है और "भारत की सम्प्रभुता या एकता और अखण्डता को ख़तरे में डालने" वाले कृत्यों की बात की गयी है, लेकिन यह वाक्यांश ही पारिभाषिक रूप से इतना व्यापक और अस्पष्ट है कि इसकी कई व्याख्याएँ की जा सकती है। राज्यसत्ता इसका मनमाना इस्तेमाल करेगी। सरकार की आलोचना करने वाले एक आम राजनीतिक भाषण, या किसी भी प्रकार की असहमति या सोशल मीडिया के पोस्ट को भी "एकता और अखण्डता को ख़तरे में डालने वाला कृत्य" करार दिया जा सकता है। इस रूप में राज्य या सरकार अपने ख़िलाफ़ होने वाले किसी भी प्रकार के विरोध को इस श्रेणी में रखने का प्राधिकार रखती है। **देश के प्रति वफ़ादारी, अब देश की जनता के प्रति वफ़ादारी नहीं है, बल्कि सरकार के प्रति वफ़ादारी बना दी गयी है।** इसका किस हद तक फ़ासीवादी सत्ता द्वारा अपने राजनीतिक विरोधियों के ख़िलाफ़ दुरुपयोग किया जा सकता है, इसका अनुमान लगाना मुश्किल नहीं हैं। जहाँ तक सज़ा का सवाल है तो नये क़ानून में इसे और अधिक कठोर बना दिया गया है।

मानसून सत्र में पेश किया गये पहले मसौदे में आतंकवाद के अपराध की परिभाषा, इन नयी "न्याय" संहिताओं के असल औचित्य को नंगे रूप से रेखांकित करती थी। हालाँकि बाद में उसे संशोधित करके पेश किया गया है। नये बदलावों ने राज्य द्वारा सज़ा दिये जाने के दायरे को विस्तारित कर दिया है। मसलन, धारा 111 के अन्तर्गत यह लिखा गया है कि किसी व्यक्ति ने आंतकवादी कृत्य किया है, यदि वह भारत में या विदेश में भारत की एकता, अखण्डता और सुरक्षा के लिए ख़तरा पैदा करने, जनसाधारण या उसके किसी भी हिस्से को डराने, धमकाने या सरकारी व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करने की मंशा से कोई कार्य करता है, या किसी सम्पत्ति की क्षति या विनाश के कारण क्षति या हानि, समुदायिक जीवन के लिए आवश्यक किन्हीं आपूर्तियों या सेवाओं का विनाश, सरकारी या लोक सुविधा, लोकस्थान या निजी सम्पत्ति का विनाश करता है। **यानी, मंशा और सम्भावना के आधार पर किसी को भी आतंकवादी घोषित किया जा सकता है! आतंकवाद विरोधी क़ानून का असली निशाना जनता ही है। निश्चित ही नये प्रावधान जन प्रतिरोध और राजनीतिक विरोध की ओर ही इशारा कर रहे हैं। यह विरोध प्रदर्शनों को अपराध बना देता है और इन्हें भी "आंतकवाद" की क्षेणी में रखता है।** आवश्यक सेवाओं में कर्मचारी को हड़ताल करने पर आतंकवादी घोषित किया जा सकता है। धारा 111 के तहत आवश्यक सेवाओं में लगे कर्मचारी जैसे डॉक्टर, नर्स, रेलवे कर्मचारी, आँगनवाड़ीकर्मी, आशाकर्मी आदि अब हड़ताल या प्रदर्शन तक नहीं कर पायेंगे क्योंकि इन्हें आंतकवादी गतिविधि घोषित किया जा सकता है! दरअसल एक बौखलायी हुई फ़ासिस्ट सत्ता हर क़िस्म के विरोध को भ्रूण में ही ख़त्म कर देने के क़ानूनी तैयारी में लगी हुई है।

इसके अलावा साक्ष्य अधिनियम में बदलाव के मायने को समझना भी ज़रूरी है। **नयी संहिताओं के तहत अब किसी अभियुक्त पर उसकी अनुपस्थिति में भी मुक़दमा चलाया जा सकता है।** साक्ष्य अधिनियम में बदलाव के साथ, इलेक्ट्रॉनिक और डिजिटल रिकॉर्ड को अदालत के समक्ष साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। ईमेल, इलेक्ट्रॉनिक सन्देश, सर्वर लॉग, स्थान विवरण आदि सभी को इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य के हिस्से के रूप में शामिल किया जायेगा, जो अदालत में स्वीकार्य होगा।। यानी नया क़ानून स्पष्ट रूप से जाँच के दौरान फ़ोन, लैपटॉप आदि जैसे डिजिटल उपकरणों को ज़ब्त करने की अनुमति देता है। **यह अधिनियम लोगों की निजता पर हमला है।** यह इलेक्ट्रॉनिक सर्विलांस (निगरानी) को वैधता प्रदान करता है। इसकी आड़ में आम लोगों के ऊपर निगरानी रखने का काम किया जायेगा। साथ ही, दुनिया भर की सत्ताओं ने ऐसे प्रमाणों को फर्जी तौर पर बनाकर राजनीतिक विरोध करने वाले लोगों के फोन, लैपटॉप आदि में आरोपित करने का काम हमेशा से ही किया है। 'मॉब लिंचिंग' और 'संगठित अपराध' (हालाँकि इससे जुड़े क़ानून भी पहले से मौजूद हैं, मसलन मकोका) की नयी धाराएँ जोड़ी तो गयी हैं, **लेकिन 'नफ़रती भाषण' (हेट स्पीच) को किसी भी प्रावधान के तहत दण्डनीय नहीं बनाया गया है। ज़ाहिरा तौर पर, यदि ऐसा किया जाता तो कम से कम औपचारिक तौर पर तो मोदी और शाह समेत संघ और भाजपा से जुड़ा सम्भवतः हर व्यक्ति ही हवालात में होता!**

कुल मिलाकर कहें तो नये अपराधिक क़ानून दमन के हथियारों को अपडेट करने और अधिक दमनात्मक बनाने का ही काम करते हैं। अपने भक्तों और जनता के बेवकूफ़ बनाने के लिए फ़ासीवादी सत्ता को अपने को भारतीय, आधुनिक, जनपक्षधर, न्यायप्रिय दिखाने का प्रपंच करना पड़ता है। लेकिन असलियत छिपाना मुश्किल है। पुराना भारतीय दण्ड क़ानून हो या भारतीय न्याय क़ानून, ये सभी क़ानून जनता के दमन के ही निकाय हैं। लेकिन मोदी सरकार के नये क़ानूनों को पहले से अधिक दमनकारी और फ़ासीवादी बनाया गया है। तीन नये आपराधिक क़ानूनों के ज़रिये आने वाले बर्बर समय की आहट महसूस की जा सकती है, जिसकी ज़द में तमाम इन्साफ़पसन्द नागरिक, जनपक्षधर बुद्धिजीवी, पत्रकार, क्रान्तिकारी राजनीतिक कार्यकर्ता से लेकर आम मेहनतकश आबादी आयेगी। इन संहिताओं के कुछ नुक़्तों को ही ध्यान से देखने से इसकी अन्तर्वस्तु का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। इन्हें संगठित प्रतिरोध के दम पर टक्कर दी जा सकती है और पीछे भी धकेला जा सकता है। इसका उदाहरण जनवरी 2024 में इन्हीं क़ानूनों में 'हिट एण्ड रन' के अत्यधिक कठोर प्रावधानों के कारण इनके ख़िलाफ़ ट्रक व अन्य वाहन चालकों के ज़बरदस्त व्यापक हड़ताल को देखा जा सकता है। तब मोदी सरकार को अपने क़दम तुरन्त पीछे हटाने पड़े थे। अगर जनता के बीच सही तरीक़े से इसके बारे में प्रचार किया जाये तो अपने जीवन-सुरक्षा से लेकर अपने नागरिक और जनवादी अधिकारों की रक्षा और विस्तार के लिए संघर्ष को आगे बढ़ाया जा सकता है।

लोकसभा चुनाव-2024 के नतीजों में हुई थी हेरा-फेरी- एडीआर और वोट फ़ॉर डेमोक्रेसी की रिपोर्ट

ईवीएम और चुनाव आयोग द्वारा नतीजों में धाँधली से ही सत्ता में आया भाजपा-नीत गठबन्धन

● योगेश

हमने मज़दूर बिगुल, मई 2024 के सम्पादकीय अग्रलेख में ही यह बात कही थी कि लोकसभा चुनाव-2024 में ईवीएम में गड़बड़ी और चुनाव आयोग की धाँधली के बदौलत ही भाजपा या उसका एनडीए गठबन्धन सत्ता तक पहुँच पायेगा। इसका मुख्य कारण है कि पिछले 10 सालों में फासीवादी मोदी सरकार की नीतियों ने आम मेहनतकश आबादी ज़िन्दगी बद से बदतर बना दी है। 'सबका साथ सबका विकास' जैसी जुमलेबाजी करते हुए असल में पूँजीपतियों की ही सेवा की है। 4 जून, 2024 को आये लोकसभा चुनाव के नतीजों में भाजपा गठबन्धन के सहारे सत्ता में पहुँच पाई तो यह ईवीएम और केन्द्रीय चुनाव आयोग यानी केंचुआ द्वारा चुनाव परिणाम में की गई धाँधली से ही हो पाया है। अब पिछले दिनों दो अलग-अलग संस्थाओं -- एडीआर और वोट फॉर डेमोक्रेसी द्वारा जारी रिपोर्ट से हमारी कही बात ओर पुख़्ता हो गई है।

पिछले माह जुलाई में *एडीआर* और *वोट फॉर डेमोक्रेसी* की आई रिपोर्ट लोकसभा चुनाव -2024 के चुनाव में आये नतीजों पर सवाल खड़ा करता है। *एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (एडीआर)* की रिपोर्ट की 538 सीटों में पड़े कुल वोटों और गिने गए वोटों की संख्या में लगभग छह लाख वोटों का अन्तर था। रिपोर्ट के मुताबिक, अमरेली, अहिंगल, लक्षद्वीप, दादरा नगर हवेली एवं दमन दीव को छोड़कर 538 सीटों पर डाले गए कुल वोटों और गिने गए वोटो की संख्या अलग-अलग है। सूरत सीट पर मतदान नहीं हुआ था। एडीआर के संस्थापक जगदीप छोकर के मुताबिक़ चुनाव में वोटिंग प्रतिशत देर से जारी करने और निर्वाचन क्षेत्रवार तथा मतदान केन्द्रवार आँकड़े उप्लब्ध न होने को लेकर सवाल है। एडीआर की रिपोर्ट में कहा गया है कि चुनाव आयोग काउण्टिंग के आखिरी और प्रमाणिक डेटा अब तक जारी नहीं कर पाया और ईवीएम में डाले गए वोट और गिने गए वोट में अन्तर पर जवाब नहीं दे पाया। मत प्रतिशत में वृद्धि कैसे हुई इसके बारे में भी अभी तक नहीं बता पाया। मतदान प्रतिशत जारी करने में इतनी देरी कैसे हुई, केचुआ द्वारा अपनी वेबसाइट से कुछ डेटा उन्होंने क्यों हटाया? एडीआर की रिपोर्ट में कहा गया है कि चुनाव आयोग काउण्टिंग का आखिरी और ऑथेन्टिक डेटा अब तक जारी नहीं कर पाया।

एक दूसरी संस्था *वोट फॉर डेमोक्रेसी* की रिपोर्ट के मुताबिक केचुआ द्वारा सात चरणों में प्रारम्भिक मतदान आँकड़ों से लेकर अन्तिम मतदान आँकड़ों तक लगभग 5 करोड़ (4,65,46,885 करोड़) वोट चुनाव आयोग ने बढ़ाए। रिपोर्ट में दावा किया गया है कि वोटों में बढ़ोतरी के माध्यम से 15 राज्यों में कम से कम 79 सीटों पर एनडीए/बीजेपी को जीत दिलवाई गई यदि ऐसा न होता तो यह तय था कि 2024 के लोकसभा चुनाव में भाजपा गठबन्धन के सहारे भी सरकार नहीं बना पाती। साथ ही केचुआ द्वारा पूरे 7 चरणों में अन्तिम मतदान प्रतिशत के जारी करने में देरी की गई, वह स्पष्ट संशय पैदा करता है कि चुनाव नतीजों में हेरफेर की गई है। इतने सब तथ्यों के बाद कोई मोदी भक्त या दिमागी रूप से अंपग को छोड़कर कोई भी समझ जायेगा कि भाजपा इस बार ईवीएम और केचुआ की धाँधली से ही सत्ता में आई। चुनाव आयोग ने पूरे 7 चरणों में अन्तिम मतदान प्रतिशत के प्रकाशन में देरी की, वो पूरी चुनाव प्रक्रिया पर सवाल खड़ा करता है। रिपोर्ट के मुताबिक महाराष्ट्र में 11 सीट, पश्चिम बंगाल में 10 सीट, आन्ध्र प्रदेश में 7 सीट, कर्नाटक में 6 सीट, छत्तीसगढ़ में 5 सीट, राजस्थान में 5 सीट, बिहार में 3 सीट, हरियाणा में 3 सीट, मध्य प्रदेश में 3 सीट, तेलंगाना में 3 सीट, असम में 2 सीट, और अरुणाचल प्रदेश, गुजरात, केरल में 1-1 सीट बढ़ाई गई है। यानी कुल 79 सीटें बीजेपी व उनके गठबन्धन को जिताने के लिए बढ़ायी गयीं। इन 79 सीटों को बढ़ाने से लगभग 5 लाख वोटों का फायदा बीजेपी व उनके गठबन्धन को हुआ। फ़ासीवाद ने पूँजीवादी चुनावों की पूरी प्रक्रिया को ही बिगाड़कर रख दिया है। आम मेहनतकश जनता को इस बारे में चौकस रहना चाहिए। चुनाव का पूँजीवादी जनवादी हक़ हमारे लिए ज़रूरी है। यह भविष्य के क्रान्तिकारी वर्ग संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिए हमारे लिए आवश्यक है। हम अपने मज़दूर वर्गीय दूरगामी राजनीतिक संघर्ष को सीमित पूँजीवादी जनवादी अधिकारों के रहते हुए अधिक तेज़ी से आगे बढ़ा सकते हैं। चुनने और चुने जाने का अधिकार पूँजीवादी जनवाद का सबसे बुनियादी अधिकार है। हालाँकि मज़दूर वर्ग के लिए 'चुने जाने के अधिकार' में इतनी बाधाएँ खड़ी कर दी जाती हैं, कि वह आम तौर पर चुनाव में इस अधिकार का उपयोग ही नहीं कर पाता है। इस अधिकार को पूर्ण बनाने के लिए भी संघर्ष किया जाना चाहिए और इसे बचाने के लिए भी। आज जब चोर दरवाज़े से इस अधिकार को फ़ासिस्ट मोदी सरकार नष्ट कर रही है, तो हमें सड़कों पर उतरकर इसके लिए संघर्ष करने के लिए भी तैयार रहना चाहिए।

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 22

अध्याय-17

तथाकथित आदिम पूँजी संचय : पूँजीवादी उत्पादन के उद्भव की बुनियादी शर्त

• अभिनव

हमने यह देखा कि किस प्रकार पूँजी बेशी मूल्य को पैदा करती है। हमने यह भी देखा कि बेशी मूल्य किस तरह से पूँजी को पैदा करता है। लेकिन पूँजी द्वारा बेशी मूल्य को पैदा करना और फिर बेशी मूल्य का पूँजी में तब्दील होकर और अधिक पूँजी को पैदा करना एक गोल चक्कर है। हमें यह समझना पड़ेगा कि पूँजी और उजरती श्रम किस प्रकार अस्तित्व में आते हैं। इसके बिना हम पूँजीवादी उत्पादन के 'मूल पाप' को नहीं समझ सकते। इसके बिना हमारा विश्लेषण पूँजी और उजरती श्रम के मूल की व्याख्या करने के बजाय उसके अस्तित्व को मानकर शुरू होगा। नतीजतन, पूँजीवादी निजी सम्पत्ति के उद्गम को व्याख्यायित करने के बजाय हम उसे पहले से अस्तित्वमान मानकर चलेंगे। इसलिए इस प्रश्न का जवाब देना अनिवार्य है। मार्क्स *पूँजी, खण्ड-1* के आख़िरी हिस्से में इसी प्रश्न का जवाब देते हैं।

मार्क्स बताते हैं कि पूँजीवादी उत्पादन की शुरुआत के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन के साधनों के मालिकों का वर्ग, बाज़ार में एक ऐसे वर्ग से मिले जो उत्पादन के साधनों के मालिकाने से वंचित हो और इसलिए उसके पास बेचने के लिए अपनी श्रमशक्ति के अलावा और कुछ भी न हो। पूँजीवाद से पहले मौजूद सामाजिक संरचनाओं में ऐसा कोई विचारणीय आकार का वर्ग मौजूद नहीं था। एक ओर सामन्ती भूस्वामियों पर निर्भर अधीनस्थ किसानों की आबादी थी और भूदासों की आबादी थी और दूसरी ओर शहरों में उद्योगों के सामन्ती संगठन, यानी गिल्ड व्यवस्था के मातहत उस्ताद व शागिर्द कारीगरों व दस्तकरों की आबादी थी जो आम तौर पर अपने श्रम के उपकरणों की मालिक थी, और गिल्ड के विनियमनों के बन्धनों में बँधी हुई थी। गाँवों में खेती के साथ ही ग्रामीण उत्पादक वर्ग विभिन्न प्रकार की दस्तकारी के कामों में भी लगा था जो उनके दैनिन्दिन उपयोग की तमाम वस्तुएँ पैदा करता था। इसके साथ ही, ग्रामीण क्षेत्रों में चरागाहों, जंगलों, जलस्रोतों समेत तमाम प्राकृतिक संसाधन भी मौजूद थे, जिनका इस्तेमाल साझी सम्पत्ति के तौर पर प्रत्यक्ष उत्पादक, यानी किसान, गड़ेरिये, आदि किया करते थे। नतीजतन, पूँजीवादी माल उत्पादन के लिए कोई घरेलू बाज़ार भी मौजूद नहीं था क्योंकि उपभोग की तमाम वस्तुएँ अभी माल में तब्दील नहीं हुई थीं और न ही उत्पादन के साधन पूँजी में तब्दील हुए थे। वे व्यक्तिगत साधारण माल उत्पादकों की निजी सम्पत्ति थे। दूसरे शब्दों में, वे पूँजीवादी निजी सम्पत्ति में तब्दील नहीं हुए थे, बल्कि प्रत्यक्ष उत्पादकों की ही निजी सम्पत्ति थे।

बुर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्री प्रत्यक्ष उत्पादकों की निजी सम्पत्ति और पूँजीवादी निजी सम्पत्ति का अन्तर नहीं समझते। वे यह नहीं समझते कि प्रत्यक्ष उत्पादकों की निजी सम्पत्ति के निषेध के रूप में ही पूँजीवादी निजी सम्पत्ति पैदा होती है, यानी उत्पादन के साधनों का ऐसा निजी मालिकाना पैदा होता है, जिसके आधार पर उनका निजी मालिक दूसरे लोगों के श्रम का शोषण करता है। इसलिए पूँजीवादी उत्पादन की बुनियादी पूर्वशर्त यह थी कि खेती और ग़ैर-खेती उत्पादन, दोनों में ही प्रत्यक्ष उत्पादकों को उनके उत्पादन के साधनों से वंचित किया जाय। केवल इसी के ज़रिये पूँजी और उजरती श्रम के वे दो ध्रुव, दो छोर पैदा हो सकते थे, जिसके आधार पर पूँजी-सम्बन्ध का विकास हो सके। प्रत्यक्ष उत्पादकों को उनके उत्पादन के साधनों से वंचित किये जाने की प्रक्रिया को ही **आदिम संचय** (primitive accumulation) कहा जाता है।

ग़ौरतलब है कि यह प्रक्रिया पूँजीवादी उत्पादन व संचय का *परिणाम* नहीं होती है, बल्कि स्वयं उन स्थितियों को जन्म देती है जिसमें कि पूँजीवादी उत्पादन व संचय होता है। यह प्रक्रिया जबरन किसानों व पशुपालकों को भूमि से बेदख़ल करके, अन्य प्रत्यक्ष उत्पादकों को उनके उत्पादन के साधनों से वंचित करके पूरी की गयी और इसके लिए ऐसे तमाम तौर-तरीक़े अपनाये गये जो हिंसा, दमन, ज़ोर-ज़बर्दस्ती और ख़ून-ख़राबे से भरे हुए थे। पूँजी और उजरती श्रम को जन्म देने वाला आर्थिक मूल पाप, जिसने पूँजीवादी उत्पादन को सुसंगत तौर पर शुरू किया, गन्दगी और ख़ून में लिथड़ा हुआ था।

लेकिन बुर्जुआ वर्ग के अर्थशास्त्रियों ने पूँजी और उजरती श्रम के मूल की व्याख्या करने के लिए एक मिथक की रचना की और उसे जनमानस में लम्बे समय में व्यवस्थित तरीक़े से बिठाया। यह मिथक क्या था? मार्क्स इस मिथक के बारे में बताते हुए लिखते हैं :

> "बहुत-बहुत समय पहले दो प्रकार के लोग हुआ करते थे; एक, वे मेहनती, समझदार और सबसे महत्वपूर्ण, किफ़ायतसारी करने वाले कुलीन; दूसरे, आलसी बदमाश, जो अपनी धन-सम्पत्ति और अपना सबकुछ ऐय्याशी में उड़ा देते थे...इस प्रकार अन्ततः हुआ यह कि पहले किस्म के लोगों ने समृद्धि संचित कर ली, और बाद वाली किस्म के पास अन्त में स्वयं अपनी चमड़ी बेचने के अलावा कुछ नहीं बचा। और इसी मूल पाप से भारी बहुसंख्या की ग़रीबी की शुरुआत हुई जिनके पास, अपनी तमाम मेहनत के बावजूद, आज भी अपने आपको बेचने के अलावा कुछ भी नहीं है, जबकि इसी से उन लोगों की समृद्धि की कहानी भी शुरू होती है, जो समृद्धि लगातार बढ़ती जाती है, हालाँकि उन लोगों ने काम करना कभी का छोड़ दिया है। *ग़रीबी का पक्षपोषण करने के लिए हर रोज़ ऐसी नीरस बचकानी कहानियाँ हमें सुनायी जाती हैं... वास्तविक इतिहास को देखें तो यह एक कुख्यात तथ्य है कि इसमें विजय, ग़ुलामी, लूट, हत्या, संक्षेप में बल-प्रयोग ने सबसे प्रमुख भूमिका निभायी। राजनीतिक अर्थशास्त्र के कोमल पूर्ववृत्तान्तों में सबकुछ हमेशा से सुखद और शान्त ही रहा है...वास्तव में देखें तो आदिम संचय के तौर-तरीक़े सुखद और शान्त के अतिरिक्त सबकुछ थे।"* (मार्क्स, कार्ल. 1982. *पूँजी, खण्ड-1,* पेंगुइन बुक्स, पृ. 873-874, *अनुवाद और ज़ोर हमारा*)

अपने आप में उत्पादन के साधन व उपभोग की सामग्रियाँ न तो माल होती हैं और न ही पूँजी। वे माल बनती हैं, जब उनका उत्पादन केवल प्रत्यक्ष उपभोग के लिए नहीं बल्कि बेचने के लिए किया जाता है। उसी प्रकार, वे पूँजी भी तभी बनती हैं जब उनका उपयोग दूसरों की श्रमशक्ति के शोषण के ज़रिये उनका मूल्य-संवर्द्धन करने के लिए किया जाता है। यह तभी हो सकता है जब दो बेहद अलग प्रकार के मालों के स्वामी बाज़ार में एक-दूसरे से मिलें। एक वह जिसके पास उत्पादन के साधनों व उपभोग की वस्तुओं का इजारेदार मालिकाना हो जबकि दूसरा वह जिसके पास अपने माल श्रमशक्ति के अलावा और कुछ भी न हो। यानी, पूँजीपति जो उत्पादन के साधनों के इजारेदार मालिक हों और दूसरी ओर, स्वतन्त्र मज़दूर जो दोहरे अर्थ में स्वतन्त्र हो: पहला, उत्पादन के साधन के मालिकाने के "बोझ" से स्वतन्त्र हो और किसी भी पूँजीपति को अपनी श्रमशक्ति को बेचने के लिए स्वतन्त्र हो। ऐसा स्वतन्त्र मज़दूर स्वयं उत्पादन का साधन भी नहीं हो सकता है, जैसा कि दास या भूदास हुआ करते थे, न ही वह स्वयं अन्य उत्पादन के साधन का मालिक हो सकता है, जैसा कि पहले के किसान व दस्तकार हुआ करते थे। जैसे ही यह अलगाव हो जाता है, वैसे ही पूँजीवादी उत्पादन की बुनियादी शर्तें पूरी हो जाती हैं। मार्क्स लिखते हैं:

> "पूँजी-सम्बन्ध के लिए मज़दूरों और उनके श्रम के वास्तवीकरण की स्थितियों के मालिकाने के बीच पूर्ण विलगाव अनिवार्य है। जैसे ही पूँजीवादी उत्पादन अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है, वैसे ही यह न सिर्फ इस विलगाव को कायम रखता है, बल्कि इसे लगातार बढ़ते पैमाने पर पुनरुत्पादित भी करता है। इसलिए वह प्रक्रिया जो पूँजी-सम्बन्ध को पैदा करती है, केवल वही प्रक्रिया हो सकती है जो मज़दूर को स्वयं उसके श्रम की स्थितियों के मालिकाने से अलग कर दे; यह वह प्रक्रिया होती है जो दो रूपान्तरणों को अंजाम देती है, जिसमें जीविका और उत्पादन के सामाजिक साधन पूँजी में तब्दील कर दिये जाते हैं, और दूसरी ओर प्रत्यक्ष उत्पादकों को उजरती-श्रमिकों में तब्दील कर दिया जाता है। इस प्रकार, तथाकथित आदिम संचय और कुछ नहीं बल्कि वह ऐतिहासिक प्रक्रिया है जिसके तहत उत्पादक को उत्पादन के साधनों से अलग कर दिया जाता है। यह 'आदिम' दिखायी देती है क्योंकि यह पूँजी और पूँजी के अनुरूप अस्तित्व में आने वाली उत्पादन प्रणाली के प्राक्-इतिहास को निर्मित करती है।" (*वही,* पृ. 874-875)

पूँजीवादी व्यवस्था से पहले के युग के प्रत्यक्ष उत्पादक, यानी सामन्ती व अन्य प्राक्-पूँजीवादी संरचनाओं में मौजूद प्रत्यक्ष उत्पादकों के वर्ग में मूलत: निर्भर किसान थे, जो सामन्ती या अन्य प्राक्-पूँजीवादी आर्थिकेतर बन्धनों में बँधे हुए थे। वे अपनी श्रमशक्ति का अपनी इच्छा से इस्तेमाल करने के लिए आज़ाद नहीं थे। मिसाल के तौर पर, भारत में गुप्त साम्राज्य के दौर में शुरू हुई सामन्ती व्यवस्था के अन्तर्गत अधिकांशत: शूद्र वर्ण की जातियों से आने वाले निर्भर किसानों व आम तौर पर दलित आबादी के बीच से आने वाले अधीनस्थ दासवत कामगारों को सामन्ती भूस्वामियों को आर्थिकेतर उत्पीड़न के आधार पर अपना बेशी श्रम देना पडता था। वे अपनी श्रमशक्ति को अपनी इच्छा से इस्तेमाल करने के लिए स्वतन्त्र नहीं थे। एक अलग रूप में, सामन्ती उत्पादन पद्धति के दौर में भूदासत्व की व्यवस्था के तहत, *सारत:,* यही स्थिति यूरोप के कई देशों व चीन तथा जापान के निर्भर किसानों, भूदासों व अधीनस्थ खेतिहर श्रमिकों की भी थी।

उसी प्रकार ग़ैर-खेतिहर उत्पादन के क्षेत्र में गिल्डों व उत्पादक संघों की सामन्ती व्यवस्था थी, जिसके तहत शागिर्द कारीगरों व घुमन्तू कामगारों के श्रम की आपूर्ति, उनके मेहनताने, उनके द्वारा होने वाले माल उत्पादन की स्थितियाँ, कीमतें, आदि गिल्ड के सख़्त क़ानूनों के मातहत थीं और इन नियमों का उल्लंघन करना आम तौर पर सम्भव नहीं था। यानी, वहाँ भी प्रत्यक्ष उत्पादक अपनी श्रमशक्ति का अपनी इच्छानुसार इस्तेमाल करने के लिए स्वतन्त्र नहीं था। इन श्रमिकों का इन सामन्ती बन्धनों से आज़ाद होना उनके उजरती मज़दूर बनने के लिए अनिवार्य था। लेकिन साथ ही इन श्रमिकों को एक दूसरी "आज़ादी" देना भी पूँजीवादी उत्पादन के लिए अनिवार्य था : *किसानों को उनके उत्पादन के साधनों व ज़मीन से बेदख़ल करना, जो सामन्ती कायदे के अनुसार उन्हें मिली हुई थी और अन्य गैर-खेतिहर दस्तकारों व कारीगरों को भी उनके उत्पादन के साधनों से वंचित करना। यानी, न सिर्फ उन्हें सामन्ती उत्पीड़न व बन्धनों से मुक्त किया जाना था, बल्कि अस्तित्व की उन गारण्टियों से भी मुक्त किया जाना था, जो इस अधीनस्थता और बन्धन के बदले में सामन्ती दौर में प्रत्यक्ष उत्पादकों को एक हद तक मिलती थीं।*

इसी प्रक्रिया का दूसरा पहलू यह था कि पूँजी के स्वामियों को (गौर करें, पूँजी के दो रूपों का इतिहास पूँजीवाद के इतिहास से काफी पहले शुरू हो गया था: व्यापारिक पूँजी और सूदखोर पूँजी) एक ओर सामन्ती भूस्वामियों की जगह लेनी थी जिनके आर्थिकेतर उत्पीड़न पर आधारित बन्धनों में किसान व भूदास बँधे थे। वहीं दूसरी ओर, उन्हें उन गिल्डों को भी अतीत की वस्तु बना देना था, जिनके नियमों की बेड़ियाँ दस्तकारों व कारीगरों के पैरों में पड़ी हुई थीं। पूँजीवादी इतिहासकारों व राजनीतिक अर्थशास्त्रों के लेखन में ऐसा प्रकट होता है मानो उभरते पूँजीपतियों ने बस किसी नायकत्वपूर्ण संघर्ष के जरिये इन निकृष्ट बन्धनों को तोड़ व्यापक मेहनतकश जनता को आज़ाद कर दिया। लेकिन जब हम उस दूसरी "आज़ादी" की बात करते हैं, जिसकी चर्चा हमने अभी ऊपर की, तो हमें दिखता है कि आदिम संचय और पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के उद्भव का इतिहास गन्दगी और ख़ून से सना हुआ है। वास्तव में, इस रूपान्तरण ने बस प्रत्यक्ष उत्पादक की अधीनस्थता और उसकी निर्भरता के रूप और चरित्र को बदल दिया, उसे समाप्त नहीं किया। सामन्ती शोषण और उत्पीड़न की जगह पूँजीवादी शोषण ने ले ली। भूदास व निर्भर किसान की जगह उजरती ग़ुलाम ने ले ली। जिस प्रकिया ने पूँजीपति और उजरती गुलाम दोनों को जन्म दिया, उसका आधार था

(पेज 17 पर जारी)

तथाकथित आदिम पूँजी संचय : पूँजीवादी उत्पादन के उद्भव की बुनियादी शर्त

(पेज 16 से आगे)

कामगार को उत्पादन के साधनों से वंचित कर उसे पूर्णत: सामाजिक तौर पर पूँजी पर निर्भर बना देना।

इसकी शुरुआत हुई किसानों की ज़मीन से बेदख़ली से। यह प्रक्रिया दुनिया के अलग-अलग देशों में अलग-अलग रूपों में घटित हुई। कहीं ये ज़्यादा तेज़ रफ़्तार से और आमूलगामी तरीक़े से हुई, तो कहीं यह इतिहास में दीर्घकालिक रूप में फैली हुई क्रमिक प्रक्रिया से हुई। कहीं पर बाड़ेबन्दी के क़ानूनों द्वारा किसानों को उनकी ज़मीनों से जबरन बेदख़ल कर दिया गया, उनके द्वारा साझे तौर पर इस्तेमाल होने वाले साझे जल, जंगल, ज़मीन का क़ानून द्वारा निजीकरण कर उन्हें पूँजीवादी निजी सम्पत्ति में तब्दील कर दिया गया, इसी प्रक्रिया में सामन्ती भूस्वामी पूँजीवादी भूस्वामी में तब्दील हो गया और पूँजी रखने वाले उद्यमियों तथा अपेक्षाकृत बेहतर आर्थिक स्थिति रखने वाले काश्तकारों का एक हिस्सा पूँजीवादी फार्मर के रूप में उभरा; कुछ देशों में बुर्जुआ क्रान्तियों के दौरान सामन्ती भूस्वामियों व चर्च की ज़मीनों को ज़ब्त किया गया और उन्हें पूँजी रखने वाले वर्गों को सौंप दिया गया और उन्हीं के बीच से पूँजीवादी भूस्वामी, पूँजीवादी काश्तकार किसानों व पूँजीवादी मालिक किसानों का वर्ग पैदा हुआ; कहीं पर आंशिक भूमि सुधार हुए और क्रमिक प्रक्रिया में सामन्ती भूस्वामियों के एक हिस्से को पूँजीवादी भूस्वामियों में तब्दील होने का मौका दिया गया, धनी काश्तकारों के वर्ग को पूँजीवादी मालिक किसान व पूँजीवादी काश्तकार किसानों में तब्दील किया गया और बड़ी खेतिहर आबादी में भूमि का वितरण करने के बजाय उन्हें सामन्ती व्यवस्था के दौरान प्राप्त सीमित भोगाधिकार से भी वंचित कर सर्वहारा में तब्दील कर दिया गया। कुल मिलाकर, इतना स्पष्ट है कि किसानों की बड़ी आबादी को ज़मीन से अलग-अलग देशों में अलग-अलग प्रक्रिया में बेदख़ल किया गया और इस रूप में अलग-अलग रूप में आदिम संचय की प्रक्रिया को चलाया गया।

कई कठमुल्लावादी समझते हैं कि आदिम संचय की प्रक्रिया अगर ठीक उन्हीं रूपों में भारत में नहीं चली, जिन रूपों में वह ब्रिटेन में, या फ्रांस में चली, तो फिर यह प्रक्रिया भारत में चली ही नहीं है। उनका मक़सद यह साबित करना होता है कि भारत में पूँजीवाद का विकास ही नहीं हुआ है या पर्याप्त नहीं हुआ है। इस भ्रम का निवारण मार्क्स ने *पूँजी, खण्ड-1* में ही कर दिया था :

> "खेतिहर उत्पादक, यानी किसान का, ज़मीन से सम्पत्ति-हरण समूची प्रक्रिया का आधार है। इस सम्पत्ति-हरण के इतिहास ने अलग-अलग देशों में अलग-अलग आयाम अपनाये, और यह इतिहास अपने अलग-अलग चरणों से अलग-अलग प्रकार के क्रम में, और अलग-अलग ऐतिहासिक युगों में गुज़रता है। केवल इंग्लैण्ड में, यह एक क्लासिक रूप लेता है, जिसके कारण हम उसे अपने उदाहरण के रूप में लेते हैं।" (*वही*, पृ. 876)

इसके बाद, मार्क्स इंग्लैण्ड में चौदहवीं सदी के आख़िरी तृतीयांश और फिर सोलहवीं सदी में किसानों की ज़मीन से बेदख़ली का एक ऐतिहासिक वृत्तान्त पेश करते हैं। वह दिखलाते हैं कि चौदहवीं सदी में और फिर एक नये संवेग के साथ सोलहवीं सदी में इंग्लैण्ड के आन्तरिक आर्थिक परिवर्तनों और अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के परिवर्तनों के चलते ऊन उत्पादन व व्यापार के बेहद महत्वपूर्ण बन जाने के कारण किसानों की ज़मीन से बेदख़ली की प्रक्रिया चली। वजह थी खेतों को चरागाहों में तब्दील किया जाना। इंग्लैण्ड में व्यवहारत: भूदासत्व की व्यवस्था चौदहवीं सदी के पहले ही समाप्त हो चुकी थी। खेतिहर आबादी के कई हिस्से थे जिसमें मुख्य तौर पर छोटे मालिक किसानों का हिस्सा था; इसके बाद, ऐसे अर्द्धसर्वहारा वर्ग का हिस्सा आता था जिसके पास एक छोटी भूमि थी, लेकिन वह अन्यों के खेतों पर भी काम करता था। इसके अलावा, एक मज़दूर आबादी भी थी, लेकिन उसे भी उसके घर के साथ एक छोटी-सी ज़मीन मिलती थी। ये तीनों ही वर्ग गाँव में मौजूद साझी प्राकृतिक सम्पदा का भी इस्तेमाल अपने जानवरों को चराने के लिए, जलावन लकडी के लिए, फलों व अन्य संसाधनों के लिए करते थे।

इनके ज़मीन से बेदख़ली की प्रक्रिया दो तरीक़े से चली। एक ओर ऊन उत्पादन व व्यापार के समृद्धि के प्रमुख स्रोत के रूप में उभरने के साथ स्वयं व्यापारिक व बुर्जुआ हितों से जुड़ते जा रहे राजतन्त्र ने बहुसंस्तरीय सामन्ती वर्ग के एक हिस्से को बेदख़ल करके ज़मीनों को अपने नियन्त्रण में लिया और इसके साथ ही स्वयं सामन्ती वर्ग ने किसानों को ज़मीन से बेदख़ल कर ज़मीनों को चरागाहों में तब्दील करना शुरू किया। जैसा कि हमने ऊपर जिक्र किया इंग्लैण्ड का निरंकुश राजतन्त्र स्वयं इस समय बुर्जुआ चरित्र ग्रहण करता जा रहा था। बहुसंस्तरीय सामन्ती ज़मीन्दारों के वर्ग से उसका अपना अन्तरविरोध था। सामन्ती ज़मीन्दारों के वर्ग द्वारा व्यापक पैमाने पर किसानों की ज़मीन से बेदख़ली के फलस्वरूप एक बहुत बड़ी आबादी खेती से बाहर धकेल दी गयी और अंग्रेजी मैन्युफैक्चर अभी विकास की उस मंज़िल में नहीं पहुँचा था कि इस भारी आबादी को समेट पाये। बढते सामाजिक असन्तोष के मद्देनज़र राजतन्त्र ने क्रमिक प्रक्रिया में पूँजीवादी भूस्वामियों में तब्दील हो रहे सामन्ती भूस्वामियों द्वारा किसानों की बेदख़ली और खेती योग्य भूमि को बड़े पैमाने पर चरागाहों में तब्दील किये जाने और गाँव की साझी प्राकृतिक सम्पदा को निजी सम्पत्ति में तब्दील किये जाने की रफ़्तार को रोकने के लिए कुछ विनियमनकारी क़ानून भी बनाये। लेकिन उभरते पूँजीपति वर्ग की ज़रूरत थी कि किसान आबादी को और ज़्यादा तेज़ रफ़्तार से ज़मीन से बेदख़ल करना ताकि इस नवोदित सर्वहारा वर्ग द्वारा श्रम की आपूर्ति इतनी ज़्यादा हो कि उनकी मज़दूरी न्यूनतम स्तर पर गिरायी जा सके। नतीजतन, ये क़ानून भी इस प्रक्रिया की गति को ज़्यादा धीमा नहीं कर सके।

सोलहवीं सदी में धार्मिक सुधार आन्दोलन के फलस्वरूप चर्च की सम्पत्ति की पूँजीपतियों द्वारा ज़बर्दस्त लूट हुई। इसके अलावा, चर्च से जुड़े ईसाई मठों की भिक्षु आबादी को भी बेदख़ल कर सर्वहाराओं की कतार में खड़ा कर दिया गया। चर्च की सम्पत्ति की लूट का सबसे ज़्यादा फ़ायदा राजतन्त्र के करीबी पूँजीपतियों व व्यापारियों को मिला और साथ ही उभरते पूँजीवादी फार्मरों के वर्ग ने भी इसका अच्छा-ख़ासा हिस्सा लूटा। इन्होंने इन ज़मीनों को हड़पते ही इस पर आनुवांशिक तौर पर अधिकारसम्पन्न रूप में रह रहे निर्भर किसानों व काश्तकारों को बेदख़ल किया। यह प्रक्रिया इतने दर्दनाक तरीक़े से चली कि उस समय की महारानी एलिजाबेथ के मुँह से भी यह निकल गया, "हर जगह ग़रीब आदमी ग़ुलामी में जी रहा है।"

किसानों के ज़मीन से बेदख़ली की प्रक्रिया ओलिवर क्रॉमवेल-नीत क्रान्ति, प्रोटेक्टोरेट के दौर, उसके बाद स्टुअर्ट राजतन्त्र की पुनर्स्थापना और फिर सत्रहवीं सदी के अन्त में अंग्रेजी गौरवशाली क्रान्ति के बाद भी जारी रही। अट्ठारहवीं सदी आते-आते इंग्लैण्ड में छोटे मालिक किसानों का वर्ग (योमैनरी), जो कि सत्रहवीं सदी की मध्य में, क्रॉमवेलीय क्रान्ति के समय तक पूँजीवादी फार्मरों से संख्या में ज़्यादा था और क्रॉमवेल के सामाजिक आधार में मौजूद वर्गों में से एक था, समाप्त हो चुका था। उन्नीसवीं सदी आते-आते साझी प्राकृतिक सम्पत्ति का निजीकरण और पूँजीवादी फार्मरों व भूस्वामियों की ज़मीनों पर बचे कुछ किसानों को हटाने की प्रक्रिया भी, मूलत: और मुख्यत:, पूरी हो चुकी थी।

इसके साथ, लाखों की संख्या में प्रत्यक्ष उत्पादकों का उत्पादन के साधनों से विलगाव कमोबेश पूरा हुआ। इस विशाल नवोदित सर्वहारा वर्ग के पास अपनी श्रमशक्ति के अलावा और कुछ भी नहीं था। शहरों में बेहद कम मज़दूरी पर काम करने को बाध्य होने का अवसर मिलना भी सौभाग्य की बात थी क्योंकि इस आबादी का एक विचारणीय हिस्सा भिखारी, घुमन्तू, अपराधी आदि में तब्दील हुआ, जिन्हें पकडे जाने पर भयंकर अमानवीय सज़ा झेलनी पडती थी। मज़दूरों की मज़दूरी बढने न पाये इसके लिए चौदहवीं से लेकर उन्नीसवीं सदी तक अंग्रेजी राज्यसत्ता ने अधिकतम मज़दूरी का क़ानून बनाया, जिससे ज़्यादा मज़दूरी देने पर पूँजीपति को और मजूदरी लेने पर मज़दूर को सजा का प्रावधान किया गया था। उन्नीसवीं सदी तक मज़दूरों को संगठित होने व अपने संघ या यूनियन बनाने का भी अधिकार नहीं था। मज़दूरों के वर्ग संघर्ष के बूते पर उन्नीसवीं सदी में न्यूनतम मज़दूरी, कार्यदिवस और यूनियन सम्बन्धी हक़ मज़दूरों को मिलने की शुरुआत हुई। इस तरह अधिकाधिक बुर्जुआ चरित्र ग्रहण करते अंग्रेज निरंकुश राजतन्त्र ने बुर्जुआ वर्ग के साथ मिलकर न सिर्फ़ सामन्तों के वर्ग (जिनके एक विचारणीय हिस्से ने स्वयं को पूँजीवादी भूस्वामी वर्ग में भी तब्दील किया) की शक्ति को समाप्त किया, वहीं उसने प्रत्यक्ष उत्पादकों के वर्ग को ज़मीन व उत्पादन के साधनों से वंचित कर उसका सर्वहाराकरण किया, उसके अधिकतम सम्भव शोषण को सम्भव बनाने के लिए क़ानून तक बनाये और इस प्रकार आदिम संचय की प्रक्रिया के इस बुनियादी कार्यभार को पूरा किया।

आदिम संचय की इस विशिष्ट प्रक्रिया ने पूँजीवादी भूस्वामी वर्ग और सर्वहारा वर्ग को पैदा किया, लेकिन *पूँजीवादी फार्मरों का वर्ग किस रूप में पैदा हुआ? पूँजी, खण्ड-1* के उन्तीसवें अध्याय 'पूँजीवादी फार्मर का जन्म' में मार्क्स बताते हैं कि यह प्रक्रिया कई सदियों में सम्पन्न हुई। मूलत: और मुख्यत:, निर्भर किसानों व अतीत के भूदासों के वर्ग का एक हिस्सा पूँजीवादी फार्मर में तब्दील हुआ। भूदासों का ही एक हिस्सा बेलिफ़ (जो स्वयं अभी भूदास था, लेकिन उसकी स्थिति सामन्ती भूस्वामी के काश्तकार जैसी भी बन गयी थी और वह किसी हद तक उजरती श्रम का शोषण भी करने लगा था), से मेटायर (बँटाईदार से मिलता-जुलता वर्ग) की भूमिका में पहुँचा और अन्तत: एक पूँजीवादी काश्तकार किसान की भूमिका में पहुँच गया जो सामन्ती बन्धनों से मुक्त था, पूँजी निवेश कर उजरती श्रम का शोषण करता था, बेशी मूल्य का एक हिस्सा भूमि लगान के रूप में पूँजीवादी भूस्वामी के हवाले करता था और बाकी मुनाफा अपनी जेब के हवाले करता था। यह प्रक्रिया चौदहवीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही जारी थी।

पन्द्रहवीं व सोलहवीं सदी के दौरान स्वतन्त्र छोटे किसानों व खेतिहर मज़दूरों का एक छोटा हिस्सा भी पूँजीवादी फार्मरों में तब्दील हुआ। धर्म सुधार आन्दोलन के दौरान चर्च व मठों की सम्पत्ति की लूट का एक हिस्सा इसके पास भी पहुँचा। बताने का आवश्यकता नहीं है कि इस वर्ग का बड़ा हिस्सा ज़मीन से बेदख़ल हो सर्वहारा वर्ग की कतारों में शामिल हुआ। सोलहवीं सदी में कीमती धातुओं की कीमत में नयी दुनिया की खोज के बाद गिरावट आयी और उसके कारण मुद्रा का मूल्य घटा। इसके कारण, खेतिहर मज़दूरों की वास्तविक आय में भी गिरावट आयी और दूसरी तरफ मुद्रा में तय लगान के वास्तविक मूल्य में भी गिरावट आयी। वहीं खाद्यान्न, ऊन, व अन्य खेती के उत्पादों की कीमतों में बढोत्तरी हुई। नतीजतन, पूँजीवादी फार्मरों को खेतिहर मज़दूरों, पूँजीवादी भूस्वामियों व समस्त उपभोक्ताओं की कीमत पर फायदा पहुँचा और उसके पूँजी संचय की दर में बढोत्तरी आयी।

मार्क्स कहते हैं कि आदिम संचय की उपरोक्त प्रक्रिया ने न सिर्फ विशाल सर्वहारा वर्ग को खड़ा किया, पूँजी-सम्बन्ध की ज़मीन तैयार की और पूँजीपतियों के वर्ग को खड़ा किया, बल्कि उसने इन पूँजीपतियों के लिए एक *घरेलू बाज़ार* भी पैदा किया। यानी, उसने इन औद्योगिक और खेतिहर पूँजीपतियों के माल के लिए एक बाज़ार भी तैयार किया। जब तक किसान स्वयं अपने खेत पर खेती करते थे, अपने लिए आवश्यक उपकरण, वस्त्र, आदि भी स्वयं बना लिया करते थे, तमाम प्रकार की अन्य वस्तुओं का उत्पादन भी इस आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था में हो जाया करता था, तब तक पूँजीपतियों के माल के लिए कोई विचारणीय आकार का बाज़ार भी नहीं था। जैसे-जैसे प्रत्यक्ष उत्पादकों को उनके उत्पादन के साधनों से और साथ ही जीविका व उपभोग के साधनों से वंचित किया गया, वैसे-वैसे सर्वहारा वर्ग में तब्दील हो चुकी यह आबादी न सिर्फ पूँजीपतियों को अपनी श्रमशक्ति बेचने के लिए बाध्य हो गयी, बल्कि यह आबादी इन्हीं पूँजीपतियों से मज़दूरी प्राप्त कर इन्हीं पूँजीपतियों के वर्ग के मालों की ख़रीदार भी बनी। यह तब तक सम्भव नहीं था जब तक कि किसान ज़मीनों व उत्पादन के साधनों से अलग नहीं किये गये थे, जब तक वह साझी प्राकृतिक सम्पदा इन प्रत्यक्ष उत्पादकों द्वारा साझे उपयोग के लिए उपलब्ध थी जो हर जगह गाँवों में मौजूद थी। जैसे ही यह प्रक्रिया सम्पन्न हुई वैसे ही एक विशाल घरेलू बाज़ार भी तैयार हुआ। आदिम संचय के फलस्वरूप खेती में जितने श्रमिक बचे थे, वे पहले से ज़्यादा उत्पादन कर रहे थे क्योंकि बड़े पूँजीवादी फार्मों पर श्रम की सघनता कहीं ज़्यादा थी, उत्पादन की तकनीक कहीं उन्नत थी और उत्पादन का पैमाना भी कहीं व्यापक था। साथ ही, जैसे-जैसे वह ज़मीन न्यूनातिन्यून होती गयी, जिस पर किसान अपने लिए खेती करता था, वैसे-वैसे उस पर पैदा होने वाले सभी खाद्यान्न व श्रमिक की श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन में जाने वाले उत्पाद भी मज़दूरी-उत्पादों में तब्दील हो गये और परिवर्तनशील पूँजी के तत्व बन गये, यानी वे माल जिन्हें मज़दूर अपने लिए पूँजीपतियों से ख़रीदते हैं। उसी प्रकार, खेती के वे उत्पाद जो साधारण माल उत्पादन के करने वाले किसानों के वे माल जो उद्योग के लिए कच्चे माल थे, वे अब स्थिर पूँजी के तत्व बन गये, जिन्हें पूँजीपतियों द्वारा खेतिहर पूँजीपतियों से ख़रीदा जाना था। मार्क्स इस प्रक्रिया को एक उदाहरण से समझाते हैं :

> "मिसाल के तौर पर, मान लें कि वेस्टफालिया के किसानों का एक हिस्सा, जो फ्रेडरिक द्वितीय के समय, पटसन कातता था, उसका

(पेज 18 पर जारी)

तथाकथित आदिम पूँजी संचय : पूँजीवादी उत्पादन के उद्भव की बुनियादी शर्त

(पेज 17 से आगे)

सम्पत्ति-हरण कर लिया जाता है और उसे ज़मीन से खदेड़ दिया जाता है; और मान लें कि दूसरा हिस्सा, जो पीछे रह गया, उसे बड़े पैमाने के फार्मरों के दिहाडी मज़दूरों में तब्दील कर दिया गया। उसी समय, पटसन कातने और बुनने के बड़े कारखाने खडे हुए, और वे आदमी मज़दूरी के बदले काम करते हैं जिन्हें इसके लिए 'मुक्त' कर दिया गया है। पटसन अभी भी ठीक वैसा ही दिखता है, जैसा वह पहले दिखता था। उसका एक रेशा भी नहीं बदला है, लेकिन उसके शरीर में एक नयी सामाजिक आत्मा का प्रवेश हो चुका है। अब यह मालिक मैन्युफैक्चरर के स्थिर पूँजी का एक हिस्सा बन चुका है। पहले यह छोटे उत्पादकों की एक आबादी में बँट जाता था, जिन्होंने खुद ही उसकी खेती की थी और अपने परिवार के साथ छोटे-छोटे हिस्सों में उसे काता था। अब यह एक पूँजीपति के हाथों में सान्द्रित है, जो दूसरों से इससे अपने लिए कतवाता और बुनवाता है। पटसन की कताई में लगने वाला अतिरिक्त श्रम पहले कई किसान परिवारों में अतिरिक्त आय के रूप में बँट जाता था, या फ्रेडरिक द्वितीय के काल में प्रशिया के राजा के पास कर के रूप में चला जाता था। अब यह कुछ पूँजीपतियों के लिए मुनाफे के रूप में वास्तवीकृत होता है। तकले और करघे जो पहले समूचे ग्रामीण क्षेत्र के चेहरे पर बिखरे हुए थे, अब कुछ विशाल श्रम-बैरकों में मज़दूरों और कच्चे माल के साथ एकत्र कर दिये गये हैं। और तकले, करघे और कच्चे माल अब कातने व बुनने वाले मज़दूरों के स्वतन्त्र अस्तित्व के साधनों से उनपर नियन्त्रण करने के साधनों और उनसे अतिरिक्त श्रम निचोड़ने का साधन बन गये हैं, जिसका कोई मुआवजा उन्हें नहीं मिलता। आप इन विशाल कारखानों और विशाल फार्मों को देखकर बता ही नहीं सकते कि ये उत्पादन के बहुत-से छोटे-छोटे केन्द्रों को मिला दिये जाने के फलस्वरूप अस्तित्व में आये हैं और बहुत-से छोटे स्वतन्त्र उत्पादकों के सम्पत्ति-हरण के आधार पर बनाये गये हैं... खेतिहर आबादी के एक हिस्से का सम्पत्ति-हरण और उसकी बेदख़ली ने न सिर्फ औद्योगिक पूँजी के लिए मज़दूरों को खाली कर दिया, उनके जीविका के साधनों और उनके श्रम की सामग्रियों को मुक्त कर दिया; बल्कि इसने एक घरेलू बाज़ार का भी निर्माण किया।" (*वही,* पृ. 909-10)

आगे मार्क्स लिखते हैं :

"पहले, किसान परिवार जीविका के साधन और कच्चा माल पैदा करता था, जिसका अधिकांश हिस्सा स्वयं उनके ही उपभोग में जाता था। ये कच्चे माल और जीविका के साधन अब माल बन चुके हैं; बड़े पैमाने का फार्मर उन्हें बेचता है, उसे अपना बाज़ार मैन्युफैक्चर्स में मिलता है। धागे, लिनन, मोटे ऊन के सामान – वे वस्तुएँ जिनके लिए कच्चे माल पहले हर किसान परिवार की पहुँच में थे, परिवार द्वारा अपने इस्तेमाल के लिए काते और बुने जाते थे – अब मैन्युफैक्चर की वस्तुएँ बन गये हैं, जिसके बाज़ार ठीक इन्हीं ग्रामीण जिलों में मिलते हैं...इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों के सहायक धन्धों का विनाश, वह प्रक्रिया जिसके जरिये मैन्युफैक्चर खेती से अलग हो जाता है, अतीत के आत्मनिर्भर किसानों के सम्पत्ति-हरण व उनके अपने उत्पादन के साधनों से विलगाव के साथ-साथ जारी रहती है। और केवल ग्रामीण घरेलू उद्योग का विनाश ही किसी देश के घरेलू बाज़ार को वह विस्तार और स्थायित्व दे सकता है जिसकी पूँजीवादी उत्पादन पद्धति को जरूरत होती है।" (*वही,* पृ. 910-11)

मार्क्स बताते हैं कि मैन्युफैक्चरिंग के दौर में यह प्रक्रिया पूर्ण नहीं होती है, क्योंकि बड़े पैमाने का उद्योग ही खेती में भी पूँजीवादी विकास को पूर्णता तक पहुँचा सकता है और उसके साथ ही खेतिहर आबादी का बड़ा हिस्सा भी खेती के क्षेत्र से बाहर धकेल दिया जाता है। कारण यह कि बड़े पैमाने की मशीनरी के साथ उन्नत फैक्टरी आधारित पूँजीवादी उद्योग ही खेती के पूँजीवादी रूपान्तरण को एक निर्णायक स्तर तक पहुँचा देता है। इस मशीनरी के आधार पर ही खेती का पूँजीवादी विकास भी गुणात्मक रूप से नयी मंज़िल में पहुँच जाता है। समूचे घरेलू बाज़ार का औद्योगिक पूँजी व खेतिहर पूँजी के लिए जीता जाना मशीनोफैक्चर के साथ ही पूरा होता है।

जहाँ तक *औद्योगिक पूँजीपति के पैदा होने* का सवाल है, तो मार्क्स बताते हैं कि एक ओर मध्ययुग के गिल्ड के तमाम उस्ताद कारीगर, कुछ शागिर्द कारीगर व मज़दूर भी कुछ पूँजी संचय कर छोटे पूँजीपतियों में तब्दील हुए और उनमें से कुछ आदिम पूँजी संचय के साथ पूँजीवादी उत्पादन के विस्तार के साथ बाक़ायदा पूँजीपतियों के रूप में विकसित हुए। लेकिन पन्द्रहवीं सदी में लम्बी दूरी के व्यापार, नयी दुनिया की खोज व कीमती धातुओं के नये स्रोतों के अस्तित्व में आने के साथ वाणिज्य की जो आवश्यकताएँ पैदा हुईं, उनकी पूर्ति इस लम्बी प्रक्रिया में धीरे-धीरे नहीं हो सकती थी, जिसमें कुछ कारीगर व मज़दूर पूँजीपतियों में तब्दील हुए। लेकिन पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था के इतिहास के शुरू होने के सदियों पहले पूँजी का इतिहास शुरू हो चुका था। पूँजी के दो रूप दास व्यवस्था के समय ही अस्तित्व में आ चुके थे और उनका अस्तित्व सामन्ती व्यवस्था के दौर में भी जारी रहा था। ये दो रूप थे : *व्यापारिक पूँजी और सूदखोर पूँजी।*

सामन्ती दौर में, व्यापारिक पूँजी और सूदखोर पूँजी के स्वामी यानी व्यापारिक पूँजीपतियों और सूदखोर पूँजीपतियों के उद्योग में प्रवेश पर बहुत-सी बन्दिशें थीं। लेकिन सामन्ती व्यवस्था के विघटन और पूँजीवादी व्यवस्था के प्रादुर्भाव के दौर में ये बन्दिशें समाप्त होती गयीं और व्यापारिक पूँजी और सूदखोर पूँजी ने उद्योग के क्षेत्र में प्रवेश किया। मार्क्स लिखते हैं :

"सूदखोरी और वाणिज्य के जरिये बनी मुद्रा पूँजी को गाँव के सामन्ती संगठन और शहरों के गिल्ड संगठन द्वारा औद्योगिक पूँजी में तब्दील होने से रोका जाता था। ये बेड़ियाँ सामन्ती जागीरदारों की व्यवस्था के विघटन के साथ, और ग्रामीण आबादी के सम्पत्ति-हरण और आंशिक बेदख़ली के साथ समाप्त हो गयीं। नये मैन्युफैक्चर्स को समुद्र के किनारे गादियों पर, या ग्रामीण क्षेत्रों के उन बिन्दुओं पर स्थापित किया गया जो पुराने म्युनिसिपैलिटी संघों और उनके गिल्डों के नियन्त्रण के बाहर थे।" (*वही,* पृ. 915)

मार्क्स बताते हैं कि जैसे-जैसे यह प्रक्रिया आगे बढ़ी वैसे-वैसे आदिम संचय की जारी प्रक्रिया के नये और ताकतवर रूप सामने आते गये। इनमें से औपनिवेशिक लूट, राष्ट्रीय सरकारी ऋण, आधुनिक कराधान प्रणाली और संरक्षणवाद की नीतियाँ प्रमुख थीं। औपनिवेशिक लूट ने व्यापार की प्रक्रिया को ज़बर्दस्त बढ़ावा दिया, उभरते मैन्युफैक्चरर्स को विशाल बाज़ार मुहैया कराया, और भारी पैमाने पर पूँजी संचय करने का अवसर दिया। मार्क्स बताते हैं कि औद्योगिक पूँजीवाद के विकसित चरण में उद्योग वाणिज्यिक श्रेष्ठता की ज़मीन तैयार करते हैं; लेकिन मैन्युफैक्चरिंग के दौर में इसका उलटा होता है। यानी, व्यापारिक इजारेदारी और वाणिज्यिक श्रेष्ठता औद्योगिक विकास और श्रेष्ठता की ज़मीन तैयार करती है। इसी प्रकार, राष्ट्रीय ऋण ने भी आदिम संचय की प्रक्रिया को तेज़ी दी। इस ऋण की पूर्ति के लिए राज्यसत्ता ने करों का बोझ व्यापक मेहनतकश जनता पर लादा। मज़दूरों के लिए इसका अर्थ था बढ़ती महँगाई और मज़दूरी में कटौती, लेकिन छोटे माल उत्पादकों के लिए इसका अर्थ था तबाह होकर मज़दूरों की जमात में शामिल होना। दूसरी ओर, इसका प्रभाव यह होता है कि यह बैंक पूँजी की ताकत को तेज़ी से बढ़ाता है, जो भविष्य में पूँजीवादी उत्पादन के एक प्रमुख विनियामक के रूप में उभरता है।

मार्क्स बताते हैं कि आदिम संचय की प्रक्रिया बिखरे हुए उत्पादन व जीविका के साधनों को, जो छोटे-छोटे उत्पादकों के मातहत होते हैं, कुछ पूँजीपतियों के हाथों में संकेन्द्रित कर देता है जबकि छोटे उत्पादकों की आबादी के बड़े हिस्से को सर्वहारा वर्ग की कतारों में शामिल कर देता है। इसके साथ, छोटे उत्पादकों की छोटी-छोटी निजी सम्पत्तियों का नाश होता है और उसकी जगह कुछ पूँजीपतियों की बड़ी पूँजीवादी निजी सम्पत्ति का विकास होता है। लेकिन यह प्रक्रिया यहाँ रुकती नहीं है। इसके बाद, पूँजी संचय की उन्नत पूँजीवादी प्रक्रिया के ज़रिये कुछ पूँजीपति बाकी पूँजीपतियों को प्रतिस्पर्द्धा में निगलते जाते हैं। पहले मसला था बहुत-से छोटे माल उत्पादकों व किसानों की निजी सम्पत्ति का पूँजीपतियों द्वारा निगल लिये जाने का। अब मसला होता है तमाम छोटे-बड़े पूँजीपतियों की पूँजीवादी निजी सम्पत्ति का मुट्ठी-भर बड़े पूँजीपतियों द्वारा निगल लिया जाना। मार्क्स लिखते हैं :

"जैसे ही इस रूपान्तरण ने पुराने समाज गहराई और व्यापकता के साथ पर्याप्त रूप से विघटित कर दिया होता है, जैसे ही कामगारों को सर्वहाराओं में तब्दील कर दिया गया होता है, और उनके श्रम के साधनों को पूँजी में, जैसे ही पूँजीवादी उत्पादन पद्धति अपने पैरों पर खड़ी होती है, वैसे ही श्रम का और ज़्यादा समाजीकरण और ज़मीन व अन्य उत्पादन के साधनों को सामाजिक रूप से उपयोग और इस प्रकार सामुदायिक उत्पादन के साधनों में उनका और ज़्यादा रूपान्तरण एक नया रूप ले लेता है। अब जिसका सम्पत्ति-हरण होना होता है वे स्वरोज़गार प्राप्त कामगार नहीं हैं, बल्कि वह पूँजीपति है जो बड़ी संख्या में मज़दूरों का शोषण करता है।" (*वही,* पृ. 928)

यह प्रक्रिया उन्नत पूँजी संचय की प्रक्रिया है जो राजकीय बल प्रयोग या ज़ोर-ज़बर्दस्ती द्वारा नहीं घटित होती है, जैसा कि आदिम पूँजी संचय के साथ होता है। यह प्रक्रिया पूँजीवादी उत्पादन पद्धति की आन्तरिक गति और तर्क के द्वारा घटित होती है, जिसमें बाज़ार की प्रतिस्पर्द्धा में बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है। पूँजी का सान्द्रण तथा संकेन्द्रण होता है, जो अन्ततः इजारेदारी के उदय और उत्पादन के समाजीकरण के उस हद तक जाता है, जहाँ निजी विनियोजन के साथ उसका अन्तरविरोध असमाधेय हो जाता है। अब पूँजी ही पूँजीवादी उत्पादन के रास्ते में बाधा बनने लगती है। मार्क्स लिखते हैं:

"उत्पादन के साधनों का संकेन्द्रण और श्रम का समाजीकरण एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाता है कि वे पूँजीवादी आवरण के साथ असंगत हो जाते हैं। यह आवरण फट जाता है। पूँजीवादी निजी सम्पत्ति की मौत की घण्टी बज जाती है। सम्पत्ति-हरण करने वालों का सम्पत्ति-हरण हो जाता है।" (*वही,* पृ. 929)

मार्क्स बताते हैं कि बुर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्र लम्बे समय तक छोटे माल उत्पादकों की निजी सम्पत्ति और पूँजीवादी निजी सम्पत्ति के अन्तर को नहीं समझ पाया। निजी सम्पत्ति के दिव्य अधिकार की रक्षा करते हुए उसे कभी यह याद नहीं आया कि पूँजीवादी निजी सम्पत्ति न सिर्फ छोटे माल उत्पादकों की निजी सम्पत्ति के विनाश के आधार पर पैदा हुई, बल्कि वह सीधे तौर पर उसके निषेध के आधार पर ही पैदा हो सकती थी। यह बात अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया के महाद्वीपों के औपनिवेशीकरण के साथ कई बुर्जुआ अर्थशास्त्रियों के समझ में आयी। इन महाद्वीपों में जो औपनिवेशिक सेटलर गये, उन्हें अपनी पूँजी का विस्तार करने के लिए शोषण के वास्ते लम्बे समय तक उजरती श्रमिक ही नहीं मिले। जो पूँजीपति इन महाद्वीपों में अपने साथ हजारों मज़दूर लेकर गये, वे भी वहाँ जाकर मज़दूर नहीं रहे। क्योंकि वहाँ पर ज़मीन, संसाधन और उत्पादन के साधनों का ऐसा अम्बार मौजूद था, जिस पर अभी किसी का भी क़ब्ज़ा नहीं था। उनमें से अधिकांश स्वयं छोटे-छोटे भूस्वामी व उद्यमी बन गये। कोई काम करने को राज़ी होता भी था, तो इतनी ऊँची मज़दूरी पर कि वह पूँजी के मूल्य संवर्द्धन को ही असम्भव बना देता था। वहाँ पर जाकर यह सच्चाई राजनीतिक अर्थशास्त्र के समक्ष सामने आयी कि छोटी-छोटी निजी सम्पत्तियों का बलपूर्वक विनाश करके ही पूँजीवादी उत्पादन सम्भव होता है। अन्ततः, इन उपनिवेशों में यूरोपीय सेटलरों ने यही किया। क़ानूनन ज़मीन का निजीकरण कर दिया गया और उसकी ऊँची कीमतें रखी गयीं। इसने वहाँ जाने वाले कामगारों को छोटे माल उत्पादकों व भूस्वामियों में तब्दील होने की प्रक्रिया पर लगाम लगा दी। इसके साथ ही वहाँ पूँजीवादी उत्पादन का उपयुक्त रूप में विकास शुरू हुआ। छोटे माल उत्पादकों की निजी सम्पत्ति के विनाश के बिना पूँजीवादी निजी सम्पत्ति नहीं पैदा हो सकती, यह सच्चाई औपनिवेशीकरण के आधुनिक सिद्धान्त और अनुभव ने पूँजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के समक्ष साफ़ कर दी। मार्क्स *पूँजी* के पहले खण्ड के अन्त में लिखते हैं:

"यहाँ पर जिस चीज़ में हमें दिलचस्पी है, वह है वह रहस्य जिसका पर्दाफ़ाश नयी दुनिया में पुरानी दुनिया के राजनीतिक अर्थशास्त्र के समक्ष हुआ, और जिसकी उसने पुरज़ोर तरीक़े से घोषणा की: कि पूँजीवादी उत्पादन और संचय, और इसलिए पूँजीवादी निजी सम्पत्ति की भी बुनियादी पूर्वशर्त यह है कि उस निजी सम्पत्ति का ख़ात्मा हो जाए जो व्यक्ति के श्रम पर निर्भर करती थी; दूसरे शब्दों में, उसकी बुनियादी पूर्वशर्त थी कामगार का सम्पत्ति-हरण।" (*वही,* पृ. 940)

बंगलादेश का जनउभार और मेहनतकशों की एक क्रान्तिकारी पार्टी की ज़रूरत

● प्रियम्वदा

बंगलादेश की जनता ने सड़कों पर उतरकर एक बार फिर से यह साबित कर दिया है कि ज़ुल्म और अन्याय की जड़ें चाहे जितनी गहरी हों, आवाम की एकता के सामने उसका टिक पाना असम्भव होता है। छात्रों-युवाओं और मज़दूरों के बढ़ते जनसैलाब से भयाक्रान्त बंगलादेश की प्रधानमंत्री शेख़ हसीना को आख़िरकार बीते 5 अगस्त को देश छोड़कर भागना पड़ा। सेना, पुलिस से लेकर तमाम नियम-क़ानून, फ़ौज-फटाके और सुरक्षा के इन्तज़ामात धरे के धरे रह गये और बंगलादेश के अवाम ने प्रधानमंत्री आवास 'गणभवन' पर क़ब्ज़ा जमा लिया। इस जनउभार ने शेख हसीना के नेतृत्व वाले बंगलादेशी पूँजीपति वर्ग के 16 वर्षों के निरंकुश शासन को उखाड़ फेंका।

5 अगस्त को शेख हसीना के नेतृत्व वाली अवामी लीग सरकार के गिरने के बाद और किसी क्रान्तिकारी पार्टी की ग़ैर-मौजूदगी की वजह से 8 अगस्त को नोबेल विजेता मोहम्मद यूनुस के नेतृत्व वाली अन्तरिम सरकार ने सत्ता सँभाली है। हालिया स्थिति यह है कि बंगलादेश नेशनलिस्ट पार्टी (बीएनपी) और जमात सहित बंगलादेश के सात राजनीतिक दलों ने अपनी सहमति देते हुए कहा कि प्रोफ़ेसर मुहम्मद युनुस के नेतृत्व वाली अन्तरिम सरकार स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए अनुकूल माहौल तैयार करे। हालाँकि इस दौरान बस यही होगा कि शासन की बागडोर पूँजीपति वर्ग के एक हिस्से के हाथों से निकलकर पूँजीपति वर्ग के दूसरे हिस्से के हाथों में चली जायेगी!

छात्रों-युवाओं की अगुवाई में शुरू हुआ बंगलादेश का यह आन्दोलन नौकरियों में एक ख़ास तरह के राजनीतिक आरक्षण की व्यवस्था ख़त्म करने की माँग या यूँ कहें कि रोज़गार की माँग को लेकर उठ खड़ा हुआ था।

साल 2018 में आरक्षण के ख़िलाफ़ हुए प्रदर्शनों की वजह से हसीना सरकार को नौकरियों में आरक्षण का नियम वापस लेना पड़ा था लेकिन इस साल बंगलादेश के हाईकोर्ट ने सरकार के उस फ़ैसले को पलटते हुए नौकरियों में उस आरक्षण को फिर से लागू करने की बात कही जिसके बाद ही जुलाई महीने की शुरुआत में बंगलादेश विश्वविद्यालय के छात्रों द्वारा विरोध प्रदर्शन शुरू हुआ। बंगलादेश में आज़ादी के बाद साल 1972 में नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था लागू की गयी थी , जिसके तहत विभिन्न श्रेणियों के लिए 56 प्रतिशत सरकारी नौकरियाँ आरक्षित थीं। इसमें सबसे बड़ा हिस्सा – 30 प्रतिशत – स्वतंत्रता सेनानियों के लिए आरक्षित किया गया था जिसे बाद के वर्षों में स्वतंत्रता सेनानियों के बच्चों और फिर उनके पोते-पोतियों तक बढ़ाया जाने लगा। दूसरी तरफ़ सरकारी पदों पर भर्ती नहीं हो रही थी या फिर नौकरियों के अवसर ही नहीं निकाले जा रहे थे और रही-सही नौकरियाँ उन्हें ही मिल रहीं थी जो अवामी लीग के कार्यकर्ता या शेख हसीना के समर्थक थे क्योंकि कोई नहीं जानता कि बंगलादेश में स्वतंत्रता सेनानियों की संख्या कितनी है – वास्तव में यह आबादी के 0.1% से भी कम है।

आन्दोलन की शुरुआत में अवामी लीग की सरकार ने छात्रों की माँगों को सुनने के बजाय उनके लिए अपशब्दों का इस्तेमाल किया और आन्दोलन का दमन करने के लिए कई हथकण्डे अपनाये। 12 जुलाई को हुई प्रेस कॉन्फ्रेंस में शेख हसीना ने छात्रों को रज़ाकार (मुक्ति आन्दोलन के समय पाकिस्तान का साथ देने वाले देशद्रोही) और आतंकवादी करार दिया जिसके बाद आक्रोश बड़े पैमाने पर फैल गया। इंटरनेट, फ़ोन जैसी ज़रूरी सेवाओं को बन्द कर दिया गया, कर्फ़्यू, पुलिस और अवामी लीग के गुण्डों द्वारा प्रदर्शनकारियों पर हमले करवाने शुरू किये गये जिसमें 400 से अधिक लोगों के मारे जाने की ख़बर है।

शेख हसीना की सरकार द्वारा भारी दमन के बाद भी जब छात्रों का संघर्ष थमने के बजाय बढ़ता गया तब 21 जुलाई को कोर्ट ने अपने फ़ैसले में आरक्षण को ख़त्म करने का ऐलान किया लेकिन तब तक काफ़ी देर हो चुकी थी! इस आन्दोलन में अब सिर्फ छात्र नहीं रह गये थे, मज़दूरों-मेहनतकशों और समाज के अन्य तबकों से लोग शामिल हो चुके थे और आन्दोलन अधिक व्यापक रूप ग्रहण कर चुका था। अब माँग सिर्फ़ नौकरियों तक सीमित नहीं थी बल्कि शेख हसीना के इस्तीफ़े और उसके शासन के अन्त की माँग प्रमुख बन चुकी थी।

बंगलादेश की मौजूदा स्थिति और जनउभार के कारण

दुनिया के सबसे गरीब देशों में से एक बंगलादेश है। 17 करोड़ की आबादी वाले इस देश में 7 करोड़ 30 लाख से अधिक आबादी वो है जो मेहनत-मज़दूरी करती है। 3 करोड़ 20 लाख युवा ऐसे हैं जिनकी पहुँच से शिक्षा और रोज़गार बाहर है। वहीं 2023 के जून में महँगाई दर 9.72% तक पहुँच चुकी थी। पिछले 10-12 सालों में बढ़ी बेरोज़गारी और महँगाई ने आम जनता की एक बड़ी आबादी को त्रस्त कर दिया है और इसके ही नतीजे के तौर पर समाज का एक बड़ा हिस्सा ग़रीबी और मुफ़लिसी में जीने के लिए मजबूर है। लोगों के जीवन की बुनियादी ज़रूरतें भी बमुश्किल पूरी हो रही थीं।

मज़दूरों के भयंकर शोषण के दम पर बंगलादेश दुनियाभर में सबसे तेज़ बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक के रूप में जाना जाता है और विदेशी निवेशकों के लिए निवेश के प्रमुख विकल्पों में से एक रहा है। बंगलादेशी मज़दूर दुनिया के सबसे ज़्यादा शोषित मज़दूरों में से हैं।

यहाँ गारमेण्ट सेक्टर अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। बंगलादेश दुनिया में कपड़ों का तीसरा सबसे बड़ा निर्यातक है। 'बंगलादेश गारमेण्ट मैन्युफ़ैक्चरर्स एण्ड एक्सपोर्टर्स एसोसिएशन' (बीजीएमईए) के अनुसार, देश में लगभग 3,500 कपड़ा कारख़ाने हैं। इस उद्योग से लगभग 40 लाख मज़दूर जुड़े हैं, जिनमें अधिकतर महिलाएँ हैं। यहाँ के कारख़ानों में स्थितियाँ नर्क से भी बदतर हैं जिनमें महिलाएँ 18-18 घण्टे बेहद ही मामूली वेतन पर खटने को मजबूर हैं। श्रम क़ानूनों से लेकर सुरक्षा के बुनियादी इन्तज़ाम तक कारखानों में मौजूद नहीं होते हैं। इसी कारण आये-दिन कारख़ानों में दुर्घटनाओं की ख़बर सामने आती हैं। इन्हीं अमानवीय परिस्थितियों के ख़िलाफ़ पिछले साल अक्टूबर में गारमेंट्स वर्कर्स की एक बड़ी हड़ताल ने बंगलादेश की सरकार को हिला कर रख दिया था जिसके बाद ही सरकार को मज़दूरों की माँग मानने का तत्काल आश्वासन देना पड़ा।

इस बार के जनउभार में मज़दूर बड़ी संख्या में शामिल रहे हैं। शेख़ हसीना को सत्ता से हटाने में कामयाबी के बाद अभी भी बड़ी संख्या में आन्दोलन में शामिल हो रहे हैं। इस साल जनवरी में हुए चुनाव में शेख़ हसीना फिर से चुनी गई थीं। 15 साल से जारी उनके शासन को बनाये रखने के लिए इस चुनाव में भारी धाँधली की गयी थी। चुनाव के दौरान कई प्रमुख विपक्षी नेताओं को जेलों में डाल दिया गया था और इस चुनाव में मुश्किल से 40 प्रतिशत लोगों ने वोट दिया था। मुख्य विपक्षी दल बंगलादेश नेशनलिस्ट पार्टी (बीएनपी) ने इस चुनाव का बहिष्कार भी किया था। पिछले कुछ सालों से लगातार ही लोगों का असन्तोष और ग़ुस्सा हसीना सरकार की पूँजीपरस्त नीतियों के ख़िलाफ़ उबल रहा था। इस साल शुरू हुआ छात्रों का यह आन्दोलन भी किसी एक घटना का परिणाम नहीं था बल्कि लम्बे समय से सरकार की जनविरोधी नीतियों की वजह से पैदा हुआ था।

बंगलादेश का इतिहास छात्रों के जुझारू संघर्ष और कुर्बानियों का समृद्ध इतिहास रहा है चाहे वो 1952 का आन्दोलन रहा हो या फिर 1971 का स्वतंत्रता आन्दोलन।

तख़्तापलट, सेना के क़ब्ज़े, सरकारों का गिराया जाना, बलिदान और आत्मसमर्पण बंगलादेश के लिए नयी बात नहीं है। इस बार भी शुरू हुए आन्दोलन को तमाम दमन झेलने के बाद भी छात्रों ने जारी रखा और पूरी राज्य मशीनरी को ठप्प कर दिया। इस क्रान्तिकारी परिस्थिति में मज़दूर वर्ग के किसी क्रान्तिकारी विकल्प की ग़ैर-मौजूदगी के कारण अभी स्थिति यही बनती हुई दिख रही है कि सत्ता एक बार फिर से बुर्जुआ वर्ग के ही प्रतिनिधियों के हाथ में सौंपी जायेगी। इस बात की पूरी सम्भावना है कि मुख्य विपक्षी पार्टी, बीएनपी इस परिस्थिति का फ़ायदा उठाने में कोई कसर नहीं छोड़ेगी। आने वाले दिनों में वास्तव में एक और भी प्रतिक्रियावादी, इस्लामी कट्टरपंथी सरकार के गठन की सम्भावना बन सकती है जो बंगलादेश की आम जनता के लिए फिर से उतनी ही या उससे अधिक ही दमनकारी साबित होगी। क्रान्तिकारी विकल्प या मज़दूरों की देशव्यापी क्रान्तिकारी पार्टी की अनुपस्थिति में, दुनिया के कई हिस्सों में हम इस सम्भावना को साकार होते हुए देख चुके हैं। हालिया उदाहरण की ही बात करें तो श्रीलंका में किसी क्रान्तिकारी विकल्प की अनुपस्थिति में अवाम का बहादुराना संघर्ष पूँजीपति वर्ग के ही अन्य धड़ों के हाथों में सत्ता हस्तान्तरण तक सीमित रह गया।

बंगलादेश की तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टियों से बहुत उम्मीद नहीं की जा सकती क्योंकि उनमें से अधिकांश या तो संशोधनवादी हो गयी हैं या फिर कुछ तो अवामी लीग के नेतृत्व वाली सरकार का हिस्सा भी रह चुकी हैं और तात्कालिक परिस्थितियों का विश्लेषण किये बिना पुराने कार्यक्रम पर ही अटकी हुई हैं।

राजनीतिक उथल-पुथल और विकल्पहीनता की इस स्थिति में धार्मिक कट्टरपंथी और साम्प्रदायिक ताक़तें बंगलादेश में मौजूद अल्पसंख्यकों को निशाना बनाकर अपनी नफ़रती राजनीति को हवा देने का काम कर रही हैं हालाँकि आन्दोलनकारी छात्रों-युवाओं-मज़दूरों ने इस साम्प्रदायिक राजनीति का सक्रिय प्रतिकार किया है। उन्होंने अल्पसंख्यक इलाक़ों में अपनी टोलियाँ बनाकर साम्प्रदायिक ताक़तों को खदेड़ने की मुहिम भी चलायी है। यहाँ इस बात को ध्यान में रखना भी ज़रूरी है कि भारत की मोदी सरकार और उसका भोंपू मीडिया यहाँ पर साम्प्रदायिक तनाव बढ़ाने के अपने घिनौने एजेंडे के तहत बंगलादेश में हिन्दुओं पर हमलों की घटनाओं को बहुत अधिक बढ़ा-चढ़ाकर पेश कर रहा है।

इस बात की भी सम्भावना और उम्मीद है कि बंगलादेश के क्रान्तिकारी छात्र, युवा, मज़दूर और आम मेहनतकश जनता दीर्घकालिक क्रान्तिकारी संघर्ष को जन्म देंगे और क्रान्तिकारी मज़दूरवर्गीय राजनीतिक विकल्प के गठन की ओर बढ़ेंगे। इसकी शुरुआत छात्रों और मज़दूरों ने अपनी कमिटियाँ बनाने से कर दी है ताकि उनकी माँगों को सामने लाया जा सके और आन्दोलन सही दिशा में आगे बढ़ सके।

इस जनउभार के बाद से बंगलादेश में मौजूद राजनीतिक उथल-पुथल का तात्कालिक पटाक्षेप भले ही पूँजीपति वर्ग के बीच सत्ता हस्तान्तरण के रूप में होकर रह जाये फिर भी जनता के संघर्ष में मौजूद क्रान्तिकारी ताक़तें निश्चय ही देशस्तर पर एक मज़दूरवर्गीय क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण की ओर कदम बढ़ायेंगी जो समाजवादी समाज क़ायम करने की दिशा में संघर्षरत होगी।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

पूँजीवाद आपके बेहतर जीवन के सपने को कैसे बर्बाद कर रहा है!

● भारत

पूँजीवाद पूरी दुनिया को बर्बाद कर रहा है, यह कहना और इसे समझना बहुत ज़रूरी है। आप अगर भारत में रहते हैं और ऊपर के पाँच प्रतिशत लोगों में शामिल नहीं हैं, तो आप अपनी ज़िन्दगी से भी दुनिया की बर्बादी को समझ सकते हैं, जो पूँजीवाद द्वारा जनित हैं। आप अगर भारत में रहने वाले निचले 90 प्रतिशत लोगो में शामिल हैं, जो मेहनत-मशक्कत कर एक बेहतर ज़िन्दगी का सपना देखते हैं, जिसमें आपका अपना घर हो, अच्छी नौकरी हो, बच्चे अच्छी शिक्षा पा रहे हों, तो आप यह ज़रूर जानते होंगे कि यह सपना पूरा होना आज कितना मुश्किल होता जा रहा है। देश की बहुसंख्यक आबादी की ज़िन्दगी इसी सपने को पूरा करने के प्रयास में ख़त्म हो जाती है।

चलिए शुरू से शुरू करते हैं और जानते है कि कैसे यह पूरी पूँजीवादी व्यवस्था हमारे बेहतर ज़िन्दगी के सपने को बर्बाद कर रही है।

मान लीजिए आप एक सरकारी स्कूल से बारहवीं पास नौजवान हैं और बस यह चाहते है कि कॉलेज पढ़कर अच्छी नौकरी मिल जाये, बस ज़िन्दगी सेटल हो जाये। इस सपने को पूरा करने के लिए आप सोचेंगे कि सबसे पहले विश्वविद्यालय में दाख़िला लिया जाये। तब आप फ़ॉर्म भरते हैं, प्रवेश परीक्षा के बाद देखते हैं कि अच्छे नम्बर आने के बावजूद आपको किसी कॉलेज में दाख़िला नहीं मिला, क्योंकि सीटों की संख्या बहुत कम थी और उसके दावेदार बहुत अधिक थे। आपके 98 प्रतिशत नम्बर भी आये हों, तब भी वह दाख़िले के लिए नाकाफ़ी हैं। बाक़ी जिनके इससे भी कम नम्बर आयें, उनकी संख्या तो बहुत अधिक होती है और सीट सिर्फ़ 40-50। फिर आप सोचते हैं कि मेरी ही मेहनत में कमी रही होगी, इसलिए दाख़िला नहीं हुआ। भारत में 92 प्रतिशत ऐसी युवा आबादी जो बारहवीं पास करने के बाद कॉलेज-विश्वविद्यालयों तक नहीं पहुँच पाती। जिनका दाख़िला हो भी जाता है, उनके पास लाखों रुपये होने चाहिए ताकि पढ़ाई पूरी कर सकें।

इसके बाद आप सोचते हैं, छोड़ो कॉलेज-वॉलेज, ओपन से फ़ॉर्म भरकर, सरकारी नौकरी की तैयारी करेंगे। अगर आपके माँ-बाप के पास आपकी तैयारी का ख़र्च उठाने का पैसा नहीं है, तो आपको इसके साथ कोई नौकरी भी करनी पड़ेगी। इसके बाद आप काम करते-करते मन लगाकर पढ़ते हैं। फिर से आपकी बेहतर ज़िन्दगी का सपना जाग उठता है। इसी सपने का पीछा करते-करते आप तैयारी करते हैं। परीक्षा का दिन आता है, आप परीक्षा केन्द्र पर पहुँचते हैं, पता चलता है कि पेपर लीक हो गया। हज़ार पदों की नौकरी पर लाखों लोगो ने फ़ॉर्म भरा सबका यही हाल। बिना योग्यता जाँचे बग़ैर आप सब नाक़ाबिलों की फ़ेहरिस्त में शामिल हो जाते हैं। क्यों? क्योंकि सत्ता व पैसे की मदद से कुछ लोगों ने पहले ही प्रश्न पत्र हासिल कर लिया था।

इसके बाद भी आप हार नहीं मानते और अगली सरकारी परीक्षा की तैयारी में जुट जाते हैं। तमाम परीक्षाओं के लीक होने, रद्द होने के बाद, मान लें कि आप अपवादस्वरूप किसी एक परीक्षा में पास हो जाते हैं। फिर इण्टरव्यू के इन्तज़ार में महीनों बीत जाते हैं, ज्वाइनिंग होते-होते साल लग जाता है, अगर वह कभी हुई तो। तमाम जुगाड़ के बाद नौकरी एक मिलती है। आप सोचते हैं चलो अब दुखों से मुक्ति मिलेगी, बेहतर ज़िन्दगी का सपना अब पूरा हो जायेगा। नौकरी लगने के कुछ समय बाद पता चलता है कि आपके विभाग को निजी हाथों में बेच दिया गया है। यानी आपका सरकारी काम भी ठेके पर हो गया। डरते-डरते एक साल बीत गया। अगले साल पता चला कि ठेका समाप्त हो हो गया और आपको नौकरी से निकाल दिया गया। फिर आप ख़ुद को वहीं पाते हैं, जहाँ से शुरू किया था। यानी एक बार फिर बेहतर ज़िन्दगी की मृग-मरीचिका का पीछा करते हुए आप भटक जाते हैं।

यहाँ से दो रास्ते होते हैं या तो आप निराश होकर अपने बेहतर ज़िन्दगी के सपने को त्याग देते हैं और जो सामने हैं स्वीकार लेते हैं या फिर आप सोचते हैं सरकारी नौकरी नहीं मिली तो क्या हुआ, प्राइवेट नौकरी कर के या अपना कोई बिजनेस शुरू कर के बेहतर ज़िन्दगी के सपने को पूरा कर लेंगे।

अपना धन्धा शुरू करने के लिए भी पैसे चाहिए और इतना कि जब तक मुनाफ़ा न हो तब तक धन्धे को टिका सकें। इतने पैसे होते तो आप नौकरी की तलाश ही क्यों करते! तब थक-हार कर एक अदद नौकरी चाहे जैसी भी हो उसकी तलाश में जुट जाते हैं। तमाम जगह आवेदन भरते हैं, जहाँ भी आप जाते हैं, अपने तरह हज़ारों नौजवानों को इसी तलाश में पाते हैं। किसी तरह आपको एक छोटी-मोटी नौकरी मिल जाती है, पर इससे बेहतर ज़िन्दगी नहीं मिल सकती, बस मुश्किल से ज़िन्दा रहा जा सकता है। अपने सपने को साइड में रखकर आप ज़िन्दा रहने की होड़ में लग जाते हैं। आप अपना हाड़-माँस खपाने के बाद भी बमुश्किल तमाम इतना ही कमा पाते हैं कि माँ-बाप को कुछ पैसा भेज सके, कमरे का किराया दे सके और परिवार को दो वक़्त की रोटी मिल जाये। पूरे महीने काम करने के बाद आपको वेतन मिलता है, जो दो दिन में ही राशन-दवा-इलाज़, बच्चो की पढ़ाई में ख़त्म हो जाता है। खाने-पीने की चीज़े इतनी महँगी है कि हफ़्ते में चार दिन की कमाई खाने पर ही ख़र्च हो जाती है। बच्चो की पढ़ाई की फीस महँगी होती जा रही है। मज़बूरी में आकर आप अपने बच्चो को भी सरकारी स्कूल में डाल देते हैं। आप सोचते है कि पत्नी को भी कोई काम करना चाहिए, पर सामाजिक दवाब से करने नहीं देते। घर में भी गाँव की ज़मीन के लिए झगड़े बढ़ने लगते हैं। जो भाई आपका कल तक सगा था, गाँव के ज़मीन के बँटवारे के लिए आपसे बोलचाल तक बन्द कर चुका है। इसी में आपकी आधी ज़िन्दगी गुज़र जाती और ख़ुद को 17 वर्ष के युवा से 37 वर्ष के एक व्यक्ति में पाते हैं।

यही ज़िन्दगी जीते हुए आप कभी-कभी सोचते होंगे कि आख़िर क्यों इतनी मेहनत करने के बावजूद आपको अच्छी ज़िन्दगी नहीं मिल रही! तब आपको समझाया जाता है कि यही नियति है, सबको अच्छी ज़िन्दगी नहीं मिल सकती। क्योंकि सब लोग वैसे मेहनत नहीं करते जैसे ऊपर के पाँच प्रतिशत लोग करते हैं, इसलिए आपको ऐसे ही गुज़ारा करना पड़ेगा।

इसके बाद भी अगर आप सोचना जारी रखते हैं कि आख़िर ऐसा क्यों हो रहा है। तब आपको बताया जाता है कि आपको बेहतर ज़िन्दगी इसलिए नहीं मिल रही क्योंकि दूसरे धर्मों के लोग आपकी नौकरी छीन रहे हैं, देश पर कब्ज़ा कर रहे हैं। अगर बेहतर ज़िन्दगी चाहिए तो आपको उनको मारना होगा, उनका सफ़ाया करना होगा। अगर यह आप मान लेते हैं तो आप हत्यारों की फ़ौज में शामिल हो जाते हैं, जो सिर्फ़ अन्य धर्म के लोगो को ही सारी समस्याओं का जड़ और उनका ख़ात्मा समस्याओं का हल बताते हैं। सरकार, मीडिया व पूरे तन्त्र द्वारा यही झूठ बार-बार ज़ोर-शोर से दोहराया जाता है, आपको इसे ही सच मानने के लिए मज़बूर किया जाता है। इस तरह आपके सामने एक नकली दुश्मन खड़ा कर दिया जाता है। अगर यह अन्धभक्ति का चश्मा आप नहीं पहनते हैं, तो ज़िन्दगी आपके सामने चीख-चीख कर सच्चाई बोलती है। आपको वेतन कम मिल रहा है, नौकरी पर हमेशा ख़तरे की तलवार लटकती रहती है, महँगाई बढ़ती जा रही है, इन सब में बहुत ढूँढने के बावजूद आपको अन्य धर्म के लोग ज़िम्मेदार नज़र नहीं आयेंगे। बल्कि उल्टा होता है, लूटने वालों में शामिल अधिकतर आपके अपने धर्म और जाति के ही लोग होते हैं! आपका और आपके मालिक का धर्म एक जैसा होने के बावजूद एक अन्तर है अमीर और ग़रीब का। जो आपको लूट रहे हैं वह अमीर पूँजीपति हैं। यही आपको कहते हैं कि मुसलमानों/दलितों का सफ़ाया करो तो समस्या का समाधान हो जायेगा! पर यही आपका आपका वेतन नहीं बढ़ाते, आपको तमाम श्रम अधिकार नहीं देते। संघ परिवार और उसकी सरकार कहते हैं "हिन्दू राष्ट्र" बनाना है! पर निरपेक्ष संख्या की बात करें तो महँगाई-बेरोज़गारी से सबसे अधिक संख्या में हिन्दू ही परेशान हैं, हालाँकि प्रतिशत के हिसाब से सबसे ग़रीब आबादी मुसलमानों व दलितों की बीच है। इससे भी ज़ाहिर हो जाता है कि आम मेहनतकश मुसलमान या दलित देश की आम मेहनतकश जनता के दुश्मन नहीं हैं और न ही वे उनके अवसर छीन रहे हैं, उल्टे वे तो मेहनतकश जनता के सबसे शोषित व उत्पीड़ित हिस्से हैं।

तो अगर आप सरकार के जाल में भी नहीं फँसते और न ही जो हो रहा है उसे नियति मान कर हार मान लेते हैं, तब फिर उसी सवाल पर आते हैं कि आपके साथ ऐसा क्यों हो रहा है! क्या बेहतर ज़िन्दगी का सपना देखना अपराध है! आप जहाँ भी जाते हैं, अपने तरह हज़ारों-लाखों लोगो को पाते हैं, जो आपकी तरह ही बेहतर ज़िन्दगी का सपना लिए पूँजीवाद की चक्की में बिना रुके गोल-गोल घूमते हुए पिसते चले जा रहे हैं। तो बेहतर ज़िन्दगी का आपका सपना क्या सपना ही रह जायेगा, या इसे पूरा किया जा सकता है? और इसे पूरा करने के लिए क्या करना होगा!

इन सबका जवाब देंगे लेख की अगली किस्त में।

अडानी जी का मोदी जी से भ्रष्टाचार-विहीन प्रेम!

● अन्वेषक

हिण्डनबर्ग ने एक बार फिर अपनी रिपोर्ट जारी की है। इस बार इसने पिछली बार से भी बड़ा आरोप लगाया है। इन्होंने कहा है कि शेयर बाज़ार की निगरानी के लिए बनी सेबी ही शेयर बाज़ार के घोटाले में साथ दे रही है। अब भला ऐसा हो सकता है क्या कि जिसे खेत की निगरानी की ज़िम्मेदारी मिली हो, वही अनाज चुराकर बेचने लगे? सेबी की प्रमुख माधवी बुच के बारे में कहा है कि वह अडानी द्वारा किये गये घोटाले पर कोई कार्रवाई नहीं कर रही हैं और अडानी को बचाया जा रहा है। इसके अलावा उनके पति की कम्पनी को फ़ायदा पहुँचाया गया है। ये विदेशी संस्था हमारे देश के भद्रजनों को बदनाम करने का काम लगातार कर रही है। यह सब हमारी देशभक्ति पर सवाल खड़ा करने के लिए षड्यन्त्र रचा जा रहा है। अब क्या एक पत्नी अपने पति-परमेश्वर की सेवा भी नहीं कर सकती? कैसा कलियुग आ गया है? राष्ट्रद्रोही लोग ही ऐसी बात कर सकते हैं!

आप सोचेंगे आख़िर कैसे एक विदेशी संस्था हमारी देशभक्ति पर सवाल खड़ा कर सकती है! अब समझिए : अगर आप कहेंगे कि सेबी प्रमुख अडानी को बचा रही हैं, जिसके सबूत हिण्डनबर्ग ने भी पेश किये हैं। फिर आप अडानी पर सवाल उठायेंगे। आप सोचेंगे कि जितना हम ज़िन्दगी भर मेहनत कर के नहीं कमा पाते अडानी एक दिन में कमा लेता है! आप सोचेंगे कि ये घपला कर रहा है तो इसे बचा कौन रहा है, हमारे देश में क़ानून नाम की चीज़ अभी ज़िन्दा है। क़ानून-व्यवस्था को कौन चला रहा है? सरकार! सरकार को चलाने वाले हैं हमारे प्रधानमन्त्री। यानी फिर आप प्रधानमन्त्री पर सवाल खड़ा करेंगे, उसकी पार्टी पर सवाल खड़ा करेंगे! यही पश्चिमी "सिक्युलर" तरीके से सोचना है। धर्मध्वजाधारी राष्ट्रभक्त मोदी जी पर सवाल? क्या आपको समझ में नहीं आता कि अडानी जी का विकास होगा, तभी तो राष्ट्र का विकास होगा! अब येन-केन-प्रकारेण मोदी जी अडानी जी का विकास करके राष्ट्र का विकास करने पर तुले हुए हैं, तो देशद्रोही लोग मोदी जी पर ही सवाल खड़ा कर रहे हैं! इसका मतलब आप देश पर सवाल उठा रहे हैं! अब तो आपकी देशभक्ति कठघरे के दायरे में खड़ी हो जायेगी। ख़ैर, मोदी जी ने उसका इन्तज़ाम नहीं राष्ट्रवादी अपराध संहिता लागू करके कर दिया है। यही चाहती है ये विदेशी संस्थाएँ। माधवी जी ने भी कह दिया है कि इसपर ज़्यादा ध्यान न दिया जाये नहीं तो बेवजह सवाल उठाने वालों को दिक्कत हो सकती है! अपना भला चाहने वाले समझें कि मोदी जी राष्ट्र का विकास करने के लिए अडानी जी का विकास कर रहे हैं। उन्हीं के कारख़ानों और धन्धों में तो है राष्ट्र! कुछ मूर्खों को लगता है कि देश कोई कागज़ पर बना नक्शा नहीं होता, बल्कि उसमें रहने

(पेज 2 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016